आत्मधर्म

[३७१]

वढवाण के नवनिर्मित जिन मंदिर में विराजमान
श्री वर्धमानस्वामी की जिनप्रतिमा

तंत्री—पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार
वीर सं. २५०२ फाल्गुन (वार्षिक चंदा : छह रुपये) वर्ष ३१ अंक-११

卐 श्री कुंदकुंदाचार्य के चरणचिह्न की विधि 卐

卐 पूज्य स्वामी जी के पवित्र करकमलों द्वारा 卐

मंगलसूचक, आनंदवर्धक प्रतीक सौख्यनिधान,
'चंपा' मात के मंगल हस्त से, मंगल नांदीविधान

लींबडी की राजमाता द्वारा
धर्ममाता पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन का सन्मान

लींबडी शहर में तारीख २६-२-७६ के दिन प्रवचन के पश्चात् सायंकाल ४ बजे पूज्य गुरुदेव की उपस्थिति में लींबडी की राजमाता के सुहस्त से, प्रशममूर्ति पूज्य चंपाबहिन को अभिनंदन-पत्र समर्पित किया गया था, उस समय का दृश्य।

दीक्षावन में कुमार नेमिनाथ की दीक्षाविधि के प्रसंग पर
पूज्य गुरुदेव का वैराग्यबोधक प्रासंगिक प्रवचन
तथा
प्रवचनमुग्ध वैराग्यसुधापिपासु विशाल जन समुदाय

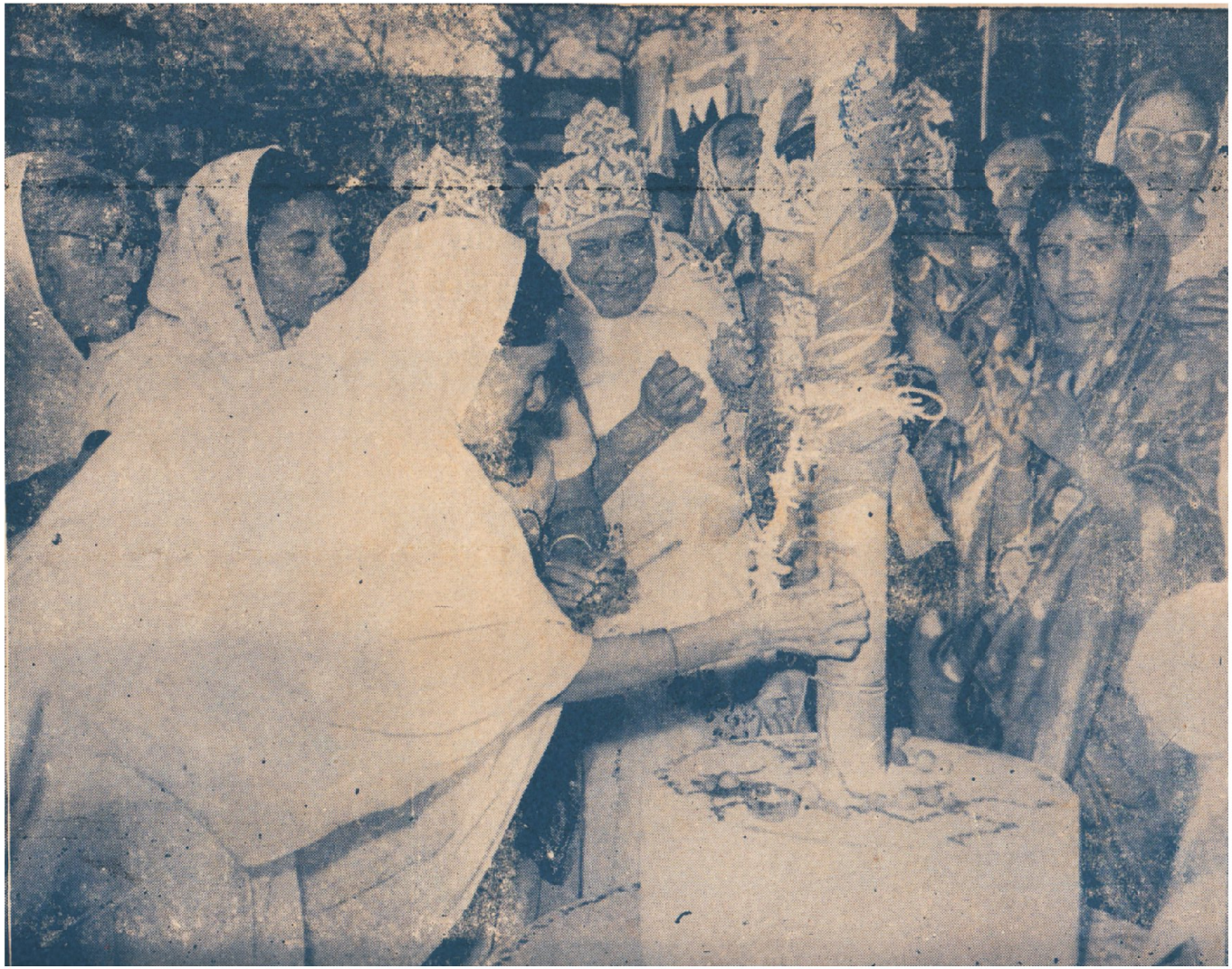

ध्वजारोपण के अवसर पर भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन के करकमल से स्वस्तिक-विधि

वार्षिक चंदा
छह रुपये
वर्ष ३१वाँ
अंक ११

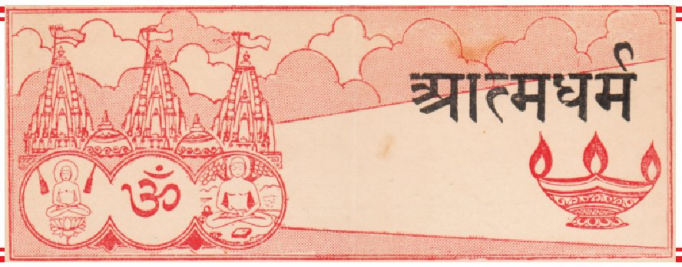

वीर सं. २५०२
फाल्गुन
ई.स. १९७६
मार्च

वढवाण शहर (सौराष्ट्र) में श्री दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर पूज्य स्वामीजी द्वारा श्री समयसार गाथा ११ पर अद्‌भुत प्रवचन।

श्री समयसार की ग्यारहवीं गाथा पर प्रवचन करते हुए कहा कि—जैन-सिद्धांत का प्राण कहो, मोक्षमार्ग का मूल कहो, वीतरागी संतों के अनुभव का हार्द कहो, सम्यग्दर्शन की रीत कहो या सबसे पहला धर्म कहो-उसका अलौकिक स्वरूप इस गाथा में आचार्यदेव ने प्रकाशित किया है। इस गाथा के भाव समझने से सर्व शास्त्रों का हार्द समझ में आ जाता है... अपूर्व सम्यग्दर्शन होता है... और आनंदरस की धारा आत्मा में प्रवाहित होती है।

पहले की 'ज्ञान वह आत्मा'—ऐसे व्यवहार को परमार्थ का प्रतिपादक कहा और फिर वह 'व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं'—ऐसा भी कहा। अब पूछते हैं कि यदि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादक है तो उस व्यवहारनय का अनुसरण क्यों नहीं करना ?—ऐसे प्रश्न का स्पष्टीकरण इस गाथा में है तथा सम्यग्दृष्टि के अनुभव का भी वर्णन है:—

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है॥

अर्थः—शुद्धपर्याय हो या अशुद्धपर्याय हो—वे सब व्यवहार होने से अभूतार्थ है अर्थात् आश्रय करनेयोग्य नहीं है क्योंकि उनके आश्रय से राग की उत्पत्ति होती है, धर्म की नहीं। शुद्धनय त्रैकालिक आत्मवस्तु को बतलानेवाला होने से भूतार्थ है अर्थात्

आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा ऋषीवरों-मुनिवरों ने बताया है। जो जीव भूतार्थ ऐसे त्रैकालिक आत्मा का आश्रय लेता है, वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। व्यवहारनय का आश्रय लेनेवाला जीव नियम से मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी है।

व्यवहारनय अभूतार्थ है। अभूत अर्थात् नहीं ऐसे अर्थ को बतलानेवाला है, इसलिये वह झूठा है। वस्तु में जो परमार्थ वस्तुभूत नहीं ऐसे राग, भेद आदि को व्यवहारनय बतलानेवाला होने से वह असत्यार्थ है। शुद्धनय भूतार्थ है। वस्तु ज्यों की त्यों बतलानेवाला होने से वह सच्चा है। जिसमें अनंत गुण हैं, ऐसी अभेद एकरूप त्रिकाली वस्तु ही सत्यार्थ है, भूतार्थ है, उसे शुद्धनय बतलाता है, इसलिये उसका आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि है।

अनादिकाल से त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावी आत्मा का अनादर और दया-दानादि शुभराग का आदर करना ही महान स्व-हिंसा है और राग का आदर छोड़कर शुद्धनय का विषय त्रैकालिक ज्ञायकस्वभाव का आदर करना ही अहिंसा है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय राग की ओर झुकी हुइ है, वह पर्याय वहाँ से विमुख होकर त्रिकाली भूतार्थ ज्ञायकभाव की ओर झुके, वहाँ से धर्म का प्रारंभ होता है। जिसमें शरीर, कर्म और राग तो नहीं परंतु एक समय की पर्याय भी नहीं, ऐसी त्रिकाली ध्रुव वस्तु भूतार्थ-सत्यार्थ है; उसका आश्रय वर्तमान पर्याय करे, तब मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी प्रारंभ होती है।

इस गाथा में कथित व्यवहार के चार भेद हैं—

- ❀ उपचरित असद्भूतव्यवहार = ज्ञान में आये वैसा बुद्धिपूर्वक का राग।
- ❀ अनुपचरित असद्भूतव्यवहार = ज्ञान में न आये वैसा अबुद्धिपूर्वक का राग।
- ❀ उपचरित सद्भूतव्यवहार = ज्ञान स्वयं का होने पर भी वह पर एवं राग को जानता है, ऐसा कहना।
- ❀ अनुपचरित सद्भूतव्यवहार = ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा भेद करना।

उपरोक्त समस्त व्यवहार अभूतार्थ है, झूठा है, क्योंकि वह अविद्यमान-असत्य

अर्थ को प्रगट करनेवाला है। त्रैकालिक अभेद एकरूप ज्ञायकभाव का आश्रय करने के लिये व्यवहारनय सर्व असत्यार्थ है। निर्मल पर्याय सहित का द्रव्य भी आश्रय करने के लिये असत्यार्थ है। स्वभाव और स्वभाववान दोनों अभेद हैं, उसकी दृष्टि करना ही सम्यग्दर्शन है।

अभेद एकरूप आत्मा सत्यार्थ है, उसकी अपेक्षा से चारों व्यवहारनय असत्यार्थ होने से वे आदर करने योग्य नहीं परंतु जानने योग्य हैं। अभेद वस्तु में राग एवं ज्ञान आदि का भेद नहीं है, इसलिये व्यवहारनय स्वयं असत्यार्थ होने से आदर करने योग्य नहीं है।

शांति के प्रयोजन की सिद्धि के लिये अथवा सम्यग्दर्शन के प्रयोजन की सिद्धि के लिये त्रैकालिक आत्मवस्तु को मुख्य कर और भेद को गौण करके वहाँ से दृष्टि हटाने के लिये उसे असत्यार्थ कहा है। पर्याय, पर्यायरूप से भी नहीं है—ऐसा नहीं है, परंतु पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा है। पर्याय को गौण किया है, इसलिये वह ध्रुव द्रव्य में है, ऐसा भी नहीं। त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावी आत्मा की दृष्टि कराने के लिये पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा है, त्रिकाली अभेद आत्मा को मुख्य करके, सत्यार्थ कहकर उसका आश्रय करवाया है। उसके अवलंबन से सम्यग्दर्शन के प्रयोजन की सिद्धि होती है।

शुद्धनय एक ही भूतार्थ है, सत्यार्थ है; क्योंकि वह सत्य अर्थ को प्रगट करता है, तथा शुद्धनय एक ही है, अशुद्धनय और शुद्धनय ऐसे दो भेद नहीं हैं। वास्तव में तो अशुद्धनय का भी व्यवहारनय में ही समावेश है। आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित होता है, वह भी भेद प्ररूपण होने से अशुद्धनय का विषय है। शुद्धनय एक ही भूतार्थ है। वह भूत, विद्यमान, सत्य, अभेद ऐसे पदार्थ को प्रगट करता है। पर्याय बिना का त्रैकालिक ध्रुव धाम आत्मा एक ही सत्यार्थ है। शुद्धनय और उसका विषय त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकभाव, ऐसे दो भेद भी उसका आश्रय करनेवाले को नहीं रहते हैं; इसलिये यहाँ शुद्धनय का विषय भूतार्थ है, ऐसा न कहकर शुद्धनय भूतार्थ है, ऐसा कहा है।

अब इस बात को दृष्टांत द्वारा समझाते हैं कि जिसप्रकार प्रबल कीचड़ के

मिलने से जिसका सहज एक निर्मलभाव ढँक गया है, ऐसे जल को पीनेवाले अनेक पुरुष जल और कीचड़ की भिन्नता के विवेक का अभाव के कारण, मलिन जल को ही पीते हैं परंतु कितने पुरुषों को जल-कीचड़ की भिन्नता का विवेक होने से अपने पुरुषार्थ द्वारा उसमें कतकफल डालकर एक सहज निर्मल ऐसे जल को प्रगट कर, उस निर्मल जल को ही पीते हैं।

उसीप्रकार कर्म के निमित्त से होनेवाले मिथ्यात्व, कषाय आदि भावों की प्रगटता से आत्मा का सहज एक निर्मल ज्ञायकभाव ढँक गया है, तिरोभूत हो गया है। 'राग वह मैं' ऐसे मिथ्यात्वभाव के कारण निर्मलानंद ज्ञायकभाव आच्छादित हो गया है। ज्ञायकभाव तो स्वभाव की अपेक्षा अनादि से ज्यों का त्यों ही है परंतु 'विकल्प वह मैं' ऐसे मिथ्यात्वभाव के कारणवह सहज स्वभाव दृष्टि में नहीं आता, इसलिये ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, ऐसा कहा जाता है। जिसप्रकार आँखों के सामने एक पर्दा आ जाने से सारा समुद्र दिखायी नहीं देता, इसलिये देखनेवाले के लिये समुद्र तिरोभूत हो गया है, ऐसा कहा जाता है। परंतु समुद्र तो ज्यों का त्यों ही है। उसीप्रकार ज्ञायकस्वभावी आत्मा तो स्वभाव से त्रिकाली नित्यानंद प्रभु अनंत गुण का पिण्ड अनादि का ज्यों का त्यों ही है, वह कहीं तिरोभाव को प्राप्त नहीं हुआ है, परंतु जाननेवाले की दृष्टि में 'रागादि वह मैं' ऐसे मिथ्यात्वभाव के कारण ज्ञायकभाव उसकी दृष्टि में न आने से तिरोभूत हो गया, ऐसा कहा जाता है।

इसप्रकार मिथ्यात्वभाव के कारण जिसका सहज एक ज्ञायकभाव ढँक गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव न करनेवाले व्यवहार में विमोहित हृदयवाले पुरुषों को, आत्मा तथा रागादि की भिन्नता का विवेक नहीं होने के कारण, जिसमें भावों का अनेकपना प्रगट है, ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं अर्थात् सहज एक ज्ञायकभाव का अनुभव नहीं करने से आत्मा को वे रागादिरूप ही अनुभव करते हैं, इसलिये मिथ्यादृष्टि हैं।

परंतु भूतार्थदर्शी अर्थात् शुद्धनय को देखनेवालों को शुद्धनय अनुसार आत्मा तथा विभाव की भिन्नता का विवेक होने से वे अपने पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकभाव के सन्मुख दृष्टि कर, सहज एक ज्ञायकभावपने के कारण जिसमें एक ज्ञायकभाव

प्रकाशमान है, ऐसे आत्मा को आविर्भूत करके–प्रगट करके अनुभव करते हैं, इसलिये वे सम्यग्दृष्टि हैं।

इसप्रकार जो शुद्धनय का अर्थात् शुद्धनय का विषयभूत त्रिकाली ज्ञायकभाव का आश्रय करते हैं, वे ही सम्यग्दृष्टि हैं, परंतु जो अशुद्धनय का आश्रय करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। अतः कर्म से अर्थात् विकारी भाव से भिन्न आत्मा को देखनेवालों के व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं, मात्र शुद्धनय ही अनुसरण करने योग्य है।

इस गाथा में वर्तमान पर्याय को जाननेवाले व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा और त्रैकालिक, अभेद, एकरूप ज्ञायकभाव को भूतार्थ, सत्यार्थ कहा है। दो भाव हैं। एक वर्तमान पर्यायरूप भाव और दूसरा त्रिकाली द्रव्यस्वभाव; उसमें पर्याय को बतलानेवाले व्यवहारनय को झूठा कहा और त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को बतलानेवाले शुद्धनय को सत्यार्थ कहा है। व्यवहारनय झूठा है, इसलिये उसके आश्रय से कभी भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती।

* व्यवहारनय को अभूतार्थ, असत्यार्थ कहने का आशय *

जिसमें कोई भी प्रकार के भेद नहीं, जिसमें वर्तमान पर्याय भी नहीं, अनंत गुण का पिण्ड होनेपर भी जिसमें 'ज्ञान वह आत्मा' ऐसा गुण–गुणी का भेद भी नहीं, ऐसा जो शुद्धनय का विषयभूत अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है, जो सम्यग्दर्शन का ध्येयभूत शुद्ध ज्ञायकभाव है, उसकी दृष्टि करने पर दृष्टि करनेवाले को अभेद एकरूप वस्तु का ही अनुभव होता है। उसको भेद दृष्टिगोचर नहीं होता, इसलिये उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ है, ऐसा ही कहा जाता है। ऐसा होने पर भी भेदरूप कोई वस्तु ही नहीं, पर्याय सर्वथा है ही नहीं—ऐसा नहीं समझना। पर्याय, पर्यायरूप से है सही परंतु अभेद दृष्टि में पर्याय दिखायी नहीं देती। अभेद की दृष्टि करनेवाली तो पर्याय है, तथापि वह पर्याय जिसको विषय बनाती है, ऐसा अभेद ज्ञायकभाव में तो पर्याय एवं भेद का सर्वथा अभाव ही है। त्रिकाली अभेद एकरूप आत्मा ही दृष्टि में आता है और वहाँ से धर्म का प्रारंभ होता है।

पर्याय सम्यग्दर्शन का विषय नहीं, क्योंकि पर्याय तो विषय करनेवाली है। यदि

पर्याय को सर्वथा अभाव मानकर असत्यार्थ मानने में आये तो वेदांत मतवालों की मान्यता सिद्ध होगी। वेदांतमतवाले भेदरूप अनित्य अवस्थाओं को मायास्वरूप कहकर सर्वथा अभावयप मानते हैं और सर्व व्यापक, एक अभेद, शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते हैं किंतु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। पर्याय का सर्वथा अभाव माने तो, वेदांत मतवालों की भाँति सर्वथा एकांत शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आ जायेगा।

यहाँ ऐसा समझना कि जिनवाणी स्याद्वादरूप है, प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके कहनेवाली है, इसलिये जिस अपेक्षा से कहा गया हो, उसीप्रकार समझना चाहिये। नित्य को सत्यार्थ कहा और अनित्य को असत्यार्थ कहा गया, वह स्याद्वाद द्वारा समझना चाहिये। जिनवाणी में प्रयोजनवश शुद्धनय को मुख्य करके निश्चय सत्यार्थ कहा गया है, तथा व्यवहारनय को गौण करके असत्यार्थ कहा गया है।

जगत में अन्य पदार्थ होने पर भी वे अपने से भिन्न होने के कारण उनको असत् कहा जाता है; परंतु वे पदार्थ सर्वथा अभावरूप असत् नहीं हैं। अन्य पदार्थों अपने स्वरूप से सत् ही हैं परंतु वे इस जीव में नहीं, इस अपेक्षा से उनको असत् कहा जाता है। उसीप्रकार त्रिकाली ज्ञायक ध्रुवभाव और वर्तमान अंश—ऐसे सत् के दो अंश हैं सही, परंतु सम्यग्दर्शनरूप साध्य की सिद्धि के लिये त्रिकाली ज्ञायकभाव को मुख्य करके सत्यार्थ कहा है और वर्तमान अंश को गौण करके असत्यार्थ कहा है। अनादि से जीव दुःख के पंथ में चला आ रहा है, वहाँ से मुक्त कराने के लिये और सुख के पंथ में ले जाने के प्रयोजनवश त्रिकाली ज्ञायकभाव का ही लक्ष कराया है। इसप्रकार जिनवाणी प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके कथन करती है।

अनादि से जीव को भेदरूप व्यवहार का ही पक्ष है और सर्व प्राणियों परस्पर व्यवहार का ही बहुधा उपदेश करते हैं तथा शास्त्र में भी शुद्धनय का सहायक-हस्तावलंबन-निमित्त जानकर व्यवहार का उपदेश बहुत किया गया है; परंतु इस समस्त व्यवहार के पक्ष का फल तो संसार ही है।

जिसप्रकार ज्ञान से मोक्ष होता है, वहाँ निचली दशा में राग की मंदता का

विकल्परूप व्यवहार होता है, इसलिये क्रिया से मोक्ष होता है—ऐसा व्यवहार से शास्त्र में कहा गया है। मुनि को श्रावक आहार देता है, आहार शरीर के टिकने में निमित्त है और शरीर संयम में निमित्त है; संयम से मुनि मोक्ष को साधता है, ऐसा कथन भी शास्त्र में आता है; केवली-श्रुतकेवली के पादमूल में ही क्षायिक सम्यग्दर्शन होने का कहा है। सत्संग से, जिनवाणी से, गुरु से, जिनप्रतिमा से, देव-ऋद्धिदर्शन से, नारकी को वेदना से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कथन शास्त्र में आता है। व्यवहार से निश्चय प्रगट होता है, ऐसे अनेक प्रकार के कथन शास्त्र में आते हैं परंतु यदि उनको परमार्थ मान लिया जाये तो उसका फल संसार ही है, क्योंकि जितना भी व्यवहार है, वह सब शुभरागरूप ही है। उसके आश्रय से संसार की ही वृद्धि होती है। यदि कोई अज्ञानी जीव व्यवहार के मार्ग को सुगम जानकर अंगीकार करेगा तो उसे संसार में ही परिभ्रमण करना पड़ेगा।

अनादिकाल से अज्ञानी जीव दया-दानादि के शुभभाव से कल्याण होगा, ऐसा सस्ता मार्ग अपनाने लगे परंतु उससे जन्म-मरण का अंत तो कभी नहीं आयेगा। शुद्ध चैतन्य आत्मा और राग के बीच भेदज्ञान किये बिना बाह्य क्रियाओं में धर्म माने और मनावे तो उसका सारा आत्मा सड़ा हुआ है, एक भी अंग एवं अवयव निरोग नहीं है।

शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष है परंतु शुद्धनय का पक्ष जीव को कभी नहीं आया। मैं त्रिकाली चैतन्यसत्तामात्र हूँ, ऐसा स्वीकार इसने कभी नहीं किया। ऐसा स्वीकार करे तो जन्म-मरण का अंत आ जाये।

शुद्धनय के यथार्थ पक्ष बिना यह जीव अनंत बार द्रव्यलिंगी साधु हुआ और उसके फल में नववीं गैवेयक तक भी गये। किंतु ध्रुव आत्मस्वभाव के आश्रय बिना शुभक्रिया के फल में मात्र संसारपरिभ्रमण ही कर रहा है।

शुद्धनय का उपदेश भी विरल है। दिगम्बर वीतराग जैनधर्म के सिवाय तो शुद्धनय का यथार्थ उपदेश अन्य कहीं पर नहीं है। वीतराग दिगम्बर जैनधर्म के शास्त्रों में भी व्यवहार का उपदेश बहुत किया है क्योंकि व्यवहारीजनों को व्यवहार के उपदेश बिना परमार्थ किसप्रकार समझाना ? इसलिये व्यवहार का उपदेश बहुत किया है परंतु यदि व्यवहार को सत्यार्थ मानकर उसका आलंबन करेंगे तो उसका फल संसार ही है।

शुद्धनय का पक्ष कभी नहीं आया होने से, उसका उपदेश भी कहीं-कहीं किया होने से तथा शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष होने से, श्रीगुरु ने उसका उपदेश मुख्यता से दिया है कि शुद्धनय सत्यार्थ है, उसकी दृष्टि करने पर सम्यग्दर्शन होता है। द्रव्यदृष्टि का विषय तो निर्मल पर्याय से भी रहित ऐसा त्रैकालिक ज्ञायकभाव ही है। जब तक जीवों को उसकी दृष्टि नहीं होती। तब तक वे व्यवहार एवं एक समय के वर्तमान प्रगट अंश में ही मग्न रहते हैं, फलतः उनकी पर्यायदृष्टि छूटती नहीं और निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है।

....आत्मधर्म के ग्राहकों से...

प्रिय महानुभाव! अब आपका प्रिय अध्यात्मिक पत्र ३२वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। नये वर्ष का चंदा ६.०० (छह रुपये) मनी आर्डर से भेजते समय अपना पूरा नाम और पता जिला-तहसील के साथ स्पष्ट अक्षरों में लिखें। जिससे आपको अंक नियमित मिलता रहे। नये वर्ष का आत्मधर्म श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर के सान्निध्य में जयपुर से छपना प्रारंभ होगा। इसलिये आप अपना चंदा जयपुर भेज सकते हैं।

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर-४ (राज.)

मैनेजर :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-सौराष्ट्र)

सूचना—हिन्दी आत्मधर्म का वर्ष जुलाई १९७६ से जून १९७७ तक का रहेगा। आजीवन सदस्य का रुपया १०१ भी जिसको भेजना हो, वह श्री टोडरमल स्मारक भवन को भेज सकते हैं। इस फेरफार के कारण से जून मास का आत्मधर्म अंक बंद रहेगा।

इन्द्रसभा में तीर्थंकर के जीव का जन्मोत्सव

वढवाण शहर के श्री वर्धमानस्वामी दिगम्बर जिनबिंब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में नेमिनाथ का जन्मकल्याणक फाल्गुन शुक्ला ५ के दिन हुआ था। उस आनंदमय प्रसंग पर इन्द्रसभा में कैसी चर्चा हुई थी, वह आप यहाँ पढ़ेंगे:—

सौधर्म— **मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।**
ज्ञातारं विश्वतत्त्वनां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

अहो देवो! जैनधर्म प्राप्त कर हम सब धन्य बने। इस एक इन्द्र पर्याय में ही हमने असंख्य तीर्थंकर भगवानों के कल्याणक मनाये, तथा तीर्थंकरदेव के शासन के प्रताप से अपूर्व कल्याणकारी सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर इस भवचक्र से हम सब अल्पकाल में मुक्त होंगे।

मिथ्यात्व आदिक भाव की की जीव ने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भाव की पर की कभी न प्रभावना॥

वर्तमान में ऐसे अपूर्व सम्यक्त्वादि की भावना भाकर भवचक्र के नाश का अद्भुत अवसर है, इसलिये जिनशासन कहता है कि हे जीवो! तुम सब ज्ञायकस्वभावी आत्मा की प्रीति करो।

इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥

हे देवो! जिनशासन में सर्वज्ञ परमात्मा ने मोह-राग-द्वेष रहित शुद्ध परिणाम को निश्चयधर्म कहा है तथा व्रत-पूजा-भक्ति आदि के शुभराग को पुण्यभाव कहा है, इसलिये तुम सब शुद्ध भावरूप धर्म को साधकर देव पर्याय को सफल करो।

१ इन्द्राणी:—हाँ देव! आपकी बात सत्य है। हमारी आयुष्य कम है, तथापि कितने

तीर्थंकर भगवानों के जीव को गोद में लेने का महान भाग्य हमको मिलता है। तीर्थंकर भगवान के जीव को स्पर्श करने से हमारी स्त्रीपर्याय भी धन्य बन गयी और हमें आत्मा के शुद्ध भाव की प्रेरणा जागृत हुई है।

२ देवी:—हे महाराज! हम सब तीर्थंकर भगवान के कल्याणक मनाते हैं तो कल्याणक का क्या अर्थ है?

२ देव:—हे देवी! आत्मा के कल्याण में जो निमित्त हो, उसका नाम कल्याणक है; सम्यक्रत्नत्रय परमार्थ कल्याणक है तथा तीर्थंकर भगवान के पंचकल्याणक अनेक जीवों के कल्याण में निमित्त होते हैं। अत: वह व्यवहार से कल्याणक है।

३ देवी:—हे स्वामी! तीर्थंकर भगवान के पंचकल्याणक अपने कल्याण में निमित्त किसप्रकार होते हैं?

३ देव:—हे देवी! तीर्थंकर भगवान के कल्याणकों के अद्भुत दृश्य देखने पर किसी भव्य जीव को चैतन्य के अपार महिमा की स्फूरणा जागृत होती है और उससे अपना कल्याण हो जाता है।

४ देवी:—बराबर है देव! इक्कीसवें तीर्थंकर के मोक्षकल्याणक को देखकर ही मुझे देह तथा आत्मा की भिन्नता का लक्ष हुआ और अतीन्द्रिय आनंद की प्रतीति हुई।

४ देव:—अहा, आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद की प्रतीति होने पर जीव की परिणति समस्त संसार से पीछे हट जाती है, और वह अपने अंतर में सुख समुद्र को देखती है।

५ देवी:—अहा, यह सुख वास्तव में अद्भुत है! शरीर और विषयों बिना का होने पर भी आत्मा का यह सुख जगत में सबसे उत्तम है।

५ देवी:—अरे, वीतरागी संत भी इस सुख को चाहते हैं:—

सुखधाम अनंत सुमंत चही,
दिनरात रहे तद् ध्यान महीं,

परशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वर ते जय ते।

* मंगल घंटनाद—बाजे—प्रकाश *

सौधर्मः—अरे! मेरा यह इन्द्रासन आज अचानक क्यों डोल रहा है? मेरे इस सिंहासन को हिलाने वाला इस जगत में कौन है? अरे, यह मधुर घंटनाद स्वयं क्यों बज रहे हैं? यह दैवी बाजे क्यों बज रहे हैं? चारों ओर इस दिव्यप्रकाश का तेज क्यों फैल रहा है? तीनलोक का वातावरण इतना हर्षमय क्यों बन रहा है? अवश्य कोई आश्चर्यकारी घटना बनी है।

(अवधिज्ञान से जानकर पश्चात् खड़ा होकर बोलते हैं)

अहो, आनंद.... आनंद.... आनंद! देवो सुनिये! मध्यलोक में भरतक्षेत्र की द्वारिका नगरी में शिवादेवी माता के उदर से बाइसवें तीर्थंकर के जीव का जन्म हो चुका है।

(सौधर्म इन्द्र सहित सब देव-देवियाँ आसन से नीचे उतरकर नमस्कार करते हैं।)

सब देवोः—धन्य हो... धन्य हो! बोलिये बाल नेमिनाथ की जय हो!

६ देवीः—अहो धन्य अवतार! मध्यलोक में तीर्थंकर के जीव का जन्म होने पर ऊर्ध्वलोक में हमारा यह स्वर्ग भी उज्ज्वल बन गया।

६ देवः—अरे, नरक के जीवों को भी दो घड़ी साता हो गई होगी और तीर्थंकर की महिमा जानकर अनेक जीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया होगा।

७ देवीः—अहा, जिनका पुण्यवैभव भी ऐसा अद्भुत है, उनके आत्मवैभव की तो क्या बात करनी?

७ देवः—अहा, उनके आत्मवैभव की महिमा समझने पर अपने को स्वयं के आत्मा का स्वभाव भी समझ में आ जाता है।

८ देवीः—अहो, यही जिनशासन की महिमा है कि कोई भी तत्त्व का सच्चा निर्णय करने पर आत्मा स्वसन्मुख होता है, और वीतरागता होती है।

८ देवः—सर्व शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता कहा है। वीतरागता का उपदेश ही इष्ट उपदेश है।

९ देवीः—अरे! जहाँ अरिहंतदेव के प्रतिमा का शुभराग भी संसार का ही कारण है, वहाँ अन्य राग की तो क्या बात करना? वास्तव में वीतरागता में ही अतीन्द्रिय आनंद है।

९ देवः—परमागम का भी यही कहना है:—

तेथी न करवो राग जरीये क्यांय पण मोक्षेच्छुअे।
वीतराग थईने अे रीते ते भव्य भवसागर तरे॥

१० देवीः—अहो, बलिहारी है तीर्थंकरों की, जिन्होंने स्वयं ऐसे वीतरागमार्ग की साधना की और जगत को भी बतलाया।

१० देवः—अहा, कैसा सुंदर मार्ग है! मनुष्य होकर आनंद से ऐसे मार्ग को साधते-साधते मोक्ष में जाऊँगा।

११ देवीः—अरे रे, ऐसे सुंदर मार्ग की भी जगत के अज्ञानी जीव निंदा करते हैं। अरे, ऐसे मार्ग को सुनने की भी मना करते हैं!!

११ देवः—भगवान के ऐसे सुंदर मार्ग की भी कोई निंदा करे तो करो परंतु मुमुक्षु जीव जिनमार्ग की भक्ति कभी नहीं छोड़ते। सच्चे मार्ग से वे कभी विचलित नहीं होते।

११ देवीः—अहा, ऐसे सुंदर वीतरागमार्ग की प्रसिद्धि करने के लिये ही तीर्थंकर के जीव का अवतार है, इसलिये हम सबको भक्ति से ऐसे मार्ग को साधकर आत्महित कर लेना चाहिये।

१२ देवः—जिनेन्द्र भगवान का मार्ग परम सुंदर है:—

पण कोई सुंदर मार्ग की ईर्षा करे निंदा बड़े;
तेनां सुणी वचनो करो न अभक्ति जिनमारग विषे।

१३ देवीः—अहा, आज तो बालक नेमिनाथ के जन्म का मंगल दिवस है। तीर्थंकर भगवान के कल्याणक अर्थात् आत्मा के कल्याण करने का अवसर।

१३ देव:—अहा, धन्य है नेमिनाथ! आपका जन्म धन्य है! जगत को वीतराग विज्ञान का महान संदेश देने के लिये आपका जन्म हुआ है।

१४ देवी:—वास्तव में वीतरागविज्ञान की प्राप्ति ही तीर्थंकर भगवान की सच्ची भक्ति है।

१४ देव:—धर्मी जीव भेदविज्ञान के द्वारा सदा ऐसी भक्ति कर रहे हैं।

१५ देवी:—सत्य है। आज ही नेमिनाथ का जन्म हुआ है, उनको भी ऐसा भेदविज्ञान वर्त ही रहा है।

१५ देव:—अहा, नेमिनाथ का जीव तो अभी एक दिन का बालक है, तथापि वह अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव की उपासना कर रहा है।

१६ देवी:—ऐसे भेदविज्ञानी नेमिनाथ का जन्मोत्सव मनाने का आज सुअवसर आया है।

१६ देव:—वाह रे वाह! तीर्थंकर भगवान की पहिचान करके, भव का अभाव करने का यह महान अवसर है।

सौधर्म:—अहो! तीर्थंकर नेमिनाथ के जीव का जन्मोत्सव स्वर्ग में हम सब आनंद से मनाते हैं। देवियों, तुम आनंद-मंगल के गीत गाओ। कुबेर! तुम देवों की सेना तैयार करो; ऐरावत हाथी तैयार करो। हम सब भरतक्षेत्र में बालक नेमिनाथ का जन्माभिषेक करने चलेंगे।

कुबेर:—जैसी आज्ञा महाराज! मेरा धन भाग्य है कि मुझे बालक नेमिनाथ की सेवा करने का महान अवसर मिला है।

महाराज! ऐरावत हाथी तैयार है। चलिये, हम सब शीघ्र मध्यलोक में चलें और बालक नेमिनाथ का दर्शन करके पावन बनें।

सौधर्म:—हाँ चलिये, सब देव चलो।

समुद्रविजय महाराजा की राजसभा में आनंद

वढवाण शहर के श्री दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव में जन्मकल्याणक (फाल्गुन शुक्ला ५) के दिन समुद्रविजय महाराजा की राजसभा का दृश्य हुआ था। उस सभा में बालक नेमिनाथ के जन्म से कैसा आनंद फैल गया था, उसका वर्णन पढ़कर आप सबको भी आनंद होगा।

समुद्रविजय महाराजा:—(महाराजा द्वारा मंगलाचरण)

जो जानता अर्हंत को चेतनमयी शुद्धभाव से,
वह जीव जाने आत्म को समकित ले आनंद से।

दूत:—बधाई महाराजा! बधाई, मंगल बधाई!

आनंद से मैं आया हूँ, एक उत्तम बधाई लाया हूँ,
शिवादेवी मैया ने आज, बालक नेमिनाथ को जन्म दिया है।

शिवादेवी माता के उदर से जगत्गुरु बाइसवें तीर्थंकर के जीव का जन्म हो चुका है।

महाराजा:—अहो, सर्वोत्कृष्ट बधाई! जगत गुरु तीर्थंकर के जीव ने अपने आँगन में पर्दापण किया है।

अहा, चैतन्यतत्त्व की अद्भुतता के साथ में प्रकृति का भी कैसा सुमेल है। तीर्थंकर के जीव का जन्म होने से आकाश मानो हँस रहा हो तथा समस्त पृथ्वी पर धर्म का बगीचा खिल रहा हो, ऐसा वातावरण दिखायी दे रहा है। जगत में सर्वत्र आनंद छा गया है और मेरे आत्मा के असंख्य प्रदेशों में भी महान आनंद की झनकार हो रही है।

हे दूत, तू इस जगत को महान आनंद उत्पन्न हो ऐसी उत्तम बधाई लाया है, ले यह इनाम। (इनाम में गले का हार देना)

सभाजनों! आप सब तीर्थंकर भगवान के जन्म का आनंद-उत्सव मनाओ,

जगह-जगह पर जिनमन्दिर की शोभा बढ़ाओ, महान पूजा रचाओ, याचकों को जो चाहिये वह दान दो और समस्त नगरी को रत्न के तोरणों से सुसज्जित करो।

१ राजा:—अहो, इस भरतक्षेत्र के इस काल में तीर्थंकर के जीव का जन्म हुआ तथा अपने को जिनधर्म मिला, जिसकी सच्ची पहिचान करने से आत्मा की सच्ची पहिचान होती है। अत: आत्मा की सच्ची पहिचान कर लेना ही हमारा परम कर्तव्य है।

१ रानी:—अहो स्वामी! तीर्थंकर के जीव का दर्शन करने से हम सब पावन हो जायेंगे और रागादि से रहित ऐसे चैतन्य को प्राप्त करेंगे।

२ राजा:—शुद्धात्मा की अनुभूति ही जिनशासन है। तीर्थंकरों के उपदेश का यही सार है और ऐसी अनुभूति द्वारा ही तीर्थंकर की सच्ची पहिचान होती है।

२ रानी:—जिसने आत्मानुभूति की, वह जीव तीर्थंकर के परिवार का सदस्य हो जाता है। आत्मानुभूति में अतीन्द्रियसुख का स्वाद आता है और जीवन में ऐसा अद्भुत परिवर्तन हो जाता है, जिसका ज्ञान स्वयं को हो जाता है।

३ राजा:—चतुर्थ काल में भरतक्षेत्र में बाईसवें तीर्थंकर के जीव का जन्म हो चुका है। अब दो तीर्थंकरों के जीवों का जन्म होने के पश्चात् अन्य किसी भी तीर्थंकर के जीव का जन्म इस क्षेत्र में नहीं होगा, परंतु पंचम काल में अनेक धर्मात्मा जीव होंगे, जो अपने आत्मा की साधना करेंगे।

३ रानी:—पंचम काल में तीर्थंकर के जीव का जन्म नहीं होगा परंतु अनेक आत्मज्ञानी संत होंगे और वे जैनधर्म के प्रवाह को पंचम काल के अंत तक अखंड बहता हुआ रखेंगे।

४ राजा:—अहो, तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों का स्मरण करावें, ऐसे अनेक प्रसंग पंचम काल में भी बनेंगे और बहुत से जीव कुमार्ग छोड़कर भगवान नेमिनाथ के मार्ग में आयेंगे और अपने आत्मा का कल्याण करेंगे।

४ रानी:—नेमिनाथ भगवान के शासन काल में ऐसे जीव भी होंगे जो गुप्तरूप से आत्मा

को साधकर आनंद को भोगते होंगे और जगत की प्रसिद्धि से बहुत दूर रहते होंगे।

५ राजा:—अहो! तीर्थंकर भगवान का मार्ग बहुत गंभीर एवं सुंदर है। वह आत्मा का अपूर्व कल्याण करनेवाला है। ऐसे तीर्थंकर के जीव का आज जन्म हुआ है, यह महान आनंद का प्रसंग है।

५ रानी:—अहो! आज द्वारिकानगरी धन्य हुई है! आज चैतन्यसूर्य का उदय हुआ है और यहाँ अतीन्द्रिय आनंद का फल देनेवाला कल्पवृक्ष स्वर्ग से उतरा है!

६ राजा:— आनंद अपार है तीर्थंकर अवतार है,
भव्य जीवों के अंतर में, खिला ज्ञान का प्रकाश है।

६ रानी:— ज्ञान का प्रकाश है, तीर्थंकर अवतार है,
भव्य जीवों के अंतर में, आनंद अपरंपार है।

७ राजा:—अहो, शिवादेवी माता! आप धन्य हो! लाखों नगरजन हर्षित होकर बालक तीर्थंकर के दर्शन करने के लिये उत्सुक हो रहे हैं।

७ रानी:—आत्मा की साधना पूर्ण करने के लिये तीर्थंकर के जीव का अंतिम जन्म है और वे जगत के जीवों को भी आत्मा की आराधना करने का उपदेश देंगे।

८ राजा:—अहो, बालक नेमिनाथ के जन्म की बात सुनने से हृदय में आनंद का सागर उछल रहा है। इन नेत्रों से उनका दर्शन करने पर आनंद होगा और अतीन्द्रिय चक्षु से आत्मा को देखने पर जो आनंद होता है, उसकी तो बात ही क्या करनी?

८ रानी:— दर्शन आनंदकार है, ये जग का तारणहार है,
ज्ञानानंद अवतार है, ये चैतन्य दातार है।

९ राजा:—अहो, तीर्थंकर की माता जगत में सबसे श्रेष्ठ माता है। जिसके पास ज्ञानचेतना है, वह जगत में पूज्य है।

९ रानी:—भगवान नेमिनाथ कहते हैं:—

हे जीवो! करना आतमज्ञान, आतमज्ञान से पावोगे तुम, पदवी मोक्ष महान।

१० राजा:—नेमिनाथ भगवान निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी मोक्षमार्ग का उपदेश देंगे और भव्य जीवों का कल्याण करेंगे।

१० रानी:—तीर्थंकर भगवान व्यवहार का भी उपदेश देंगे परंतु उस व्यवहार का फल तो स्वर्ग है, मोक्ष नहीं।

११ राजा:—अहो! अनंत तीर्थंकर देवों ने जिस मार्ग को प्रकाशित किया है, उसी मार्ग को तीर्थंकर नेमिनाथ भी प्रसिद्ध करेंगे।

११ रानी:—हम सबको भी इसी मोक्षमार्ग को साधकर नेमिनाथ के पंथ पर जाने का है। अनंत तीर्थंकरों का पंथ ही हम सबका पंथ है।

१२ राजा:— हम तो जिनवर की संतान, जिनवर पंथ में विचरेंगे,
गायें प्रभु का गुणगान, उज्ज्वल आत्मा को प्राप्त करेंगे।

१२ रानी:—इस जगत में जिनवर का पंथ ही आत्महित का पंथ है।

१३ राजा:—जिनेन्द्र शासन का लक्षण अनेकांत है, जो परम गंभीर एवं सुंदर है और जगत में जयवंत है।

१३ रानी:— जिनधर्म की जय जयकार है, तीर्थंकर अवतार है,
जग में मंगलकार है, धर्म का जय जयकार है।

१४ राजा:—बालक नेमिनाथ के जन्म से सारा विश्व आनंदमय बना है, पृथ्वी और वृक्ष के पत्ते आदि भी प्रफुल्लित हुए हैं।

१४ रानी:—जगत का अज्ञान अंधकार दूर हो जायेगा और ज्ञानप्रकाश फैलेगा। भव्य जीवों का परम कल्याण होगा।

१५ राजा:—अहो, आनंद मनाओ! अपने असंख्य प्रदेशों के फूलों से बालक नेमिनाथ का सन्मान करो! आनंद के तोरण बाँधकर उनका स्वागत करो! श्रद्धा-ज्ञान के दीपक से उनकी आरती उतारो।

१५ रानी:—अहो, निज चैतन्यभाव का सन्मान करना ही तीर्थंकर का सच्चा सन्मान है।

१६ राजा:—अहो, बालक नेमिनाथ की जन्म बधाई से अत्यंत आनंद होता है। उस आनंद को किसप्रकार व्यक्त करना, वह समझ में नहीं आता। आनंद से हृदय बहुत प्रफुल्लित हो रहा है!

१६ रानी:—इस आनंद की धारा को आत्मा की ओर बहाकर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव कर लेना ही तीर्थंकर भगवान के जीव का सच्चा जन्मोत्सव है।

समुद्रविजय महाराजा:—सभाजनों! आज के जन्म महोत्सव की खुशी में सब मंगल बधाई गाओ।

दीक्षाकल्याणक के प्रसंग पर सारथी के साथ युवराज श्री नेमिकुमार का संवाद

नेमिकुमार की बारात जूनागढ़ पहुँच गयी है; राजुलदेवी नेमिकुमार के दर्शन की राह देख रही हैं। इतने में अचानक पिंजरे में बंद किये हुए पशुओं की करुण चित्कार सुनकर नेमिकुमार सारथी को कहते है:—

हे सारथी! रथ को रोक दो... रोक दो... रोक दो! पशुओं की यह करुण चित्कार क्यों सुनायी दे रही है? ऐसे निर्दोष पशुओं को यहाँ किसने बंद किया है? ऐसे मंगल प्रसंग पर करुणता का यह कोलाहल क्यों हो रहा है? विवाह के समय वैराग्य का यह दृश्य क्यों उपस्थित हुआ?

सारथी:—महाराज! यह सब आपके विवाह के उपलक्ष में ही हो रहा है। बारात के मार्ग में इन निर्दोष पशुओं को वासुदेव ने ही बंद करवाये हैं। आप जैसे करुणावंत को देखकर यह पशु छूटने के लिये पुकार कर रहे हैं कि हे प्रभो! हमें छुड़ाओ, छुड़ाओ, छुड़ाओ!

नेमिकुमार:—अरे सारथी, सारथी! यह सब बात झूठी है। वास्तव में यह पशु मेरे विवाह के नहीं परंतु मुझे वैराग्य उत्पन्न करने के लिये ही वासुदेव ने यहाँ बंद करवाये हैं। अरे, पृथ्वी के एक छोटे टुकड़े के लिये ऐसा मायाचार! सारथी, वैराग्य का निमित्त उपस्थित कर वासुदेव ने तो मुझ पर उपकार ही किया है तथा मुझे विवाह के बंधन से छुड़ाया है। सारथी! अब रथ को पीछे मोड़ दो! अब मैं राजुल के साथ विवाह नहीं करना चाहता, मैं तो मुक्ति-सुंदरी के साथ विवाह करने के लिये गिरनार जाना चाहता हूँ।

सारथी:—प्रभो, प्रभो! आप यह क्या कहते हो?

नेमिकुमार:—सारथी! मैं सत्य कहता हूँ। मेरा चित्त इस संसार पर से उठ गया है और संसार से विरक्त होकर मैं अब आत्मसाधना को पूर्ण करना चाहता हूँ। रथ को पीछे मोड़ो! अब दिगंबरी मुनिदीक्षा धारण करके मैं मुनि होना चाहता हूँ और निर्विकल्प शुद्धोपयोग में लीन होना चाहता हूँ।

सारथी:—प्रभो! इस ओर राजुलदेवी आपकी राह देख रही हैं और द्वारिकानगरी में शिवादेवी माता आपको आशीर्वाद देने के लिये उत्सुक हो रही हैं; आप कहते हो कि मुझे शादी नहीं करनी है। प्रभो! शिवादेवी माता को मैं क्या उत्तर दूँगा? राजुलदेवी यह कैसे सहन कर सकेगी? प्रभो! पीछे न फिरो... पीछे न फिरो।

नेमिकुमार:—अरे सारथी, मेरा निर्णय अटल है। मेरा यह जन्म इस संसार के भोग के लिये नहीं, परंतु आत्मा की पूर्ण साधना के लिये ही है। अरे, इस संसार की स्थिति तो देखो! एक पृथ्वी के टुकड़े के लिये भाई के साथ मायाचार करना पड़े! निर्दोष पशुओं को पिंजरे में बंद करना पड़े... अरे, यह हिंसा शोभा नहीं देती। सारथी, इन पशुओं को छोड़ दो... इन्हें मुक्त कर दो... तथा रथ को पीछे मोड़कर गिरनार की ओर ले चलो। मेरा चित्त इस संसार से विरक्त है। इस संसार के मार्ग पर रथ नहीं चलेगा, मेरा रथ अब मोक्ष के मार्ग पर चलेगा।

मुझे लाग्यो संसार असार... मुझे लाग्यो संसार-असार।
अरे रे संसार में नहीं जाऊँ... नहीं जाऊँ... नहीं जाऊँ रे।

मुझे लगे ज्ञायकभाव सार... मुझे लागे चैतन्यपद सार–
अरे रे ज्ञायक में मैं लीन होऊँ... लीन होऊँ.... लीन होऊँ रे।

सारथी:—प्रभो! प्रभो! धन्य है आपका जीवन। आपके वैराग्य जीवन को मैं पहले से ही जानता हूँ... आप जगत से उदास हो... आप मात्र पशुओं को नहीं परंतु अपने आत्मा को इस संसार के बंधन से मुक्त कर रहे हो। प्रभो! आप जिस मार्ग को अंगीकार कर रहे हो, वही सत्य मार्ग है। मैं भी आपके ही मार्ग पर आऊँगा। देवी राजुल भी आपके ही मार्ग पर आयेगी। शिवादेवी माता भी आपके ही मार्ग पर आयेगी और वासुदेव भी अंत में आपके ही मार्ग पर आकर मुक्ति प्राप्त करेंगे। आपका मार्ग ही अनंत तीर्थंकरों का मार्ग है... जगत का भी इसी मार्ग पर अनुसरण करने पर ही कल्याण होगा।

इसप्रकार युवराज श्री नेमिकुमार के द्वारा मुनिदीक्षा का निर्णय करने पर वैराग्यमय मंगल वातावरण छा जाता है और लौकांतिक देव आकर प्रथम मंगल स्तुतिपूर्वक नेमिकुमार के वैराग्य का अनुमोदन करते हैं:—

१. अहो, आप मुनि होकर आत्मा के ध्यान से केवलज्ञानी बनेंगे और दिव्यध्वनि के द्वारा मोक्ष का मार्ग प्रसिद्ध करेंगे, उसको पाकर जगत के जीव धन्य बनेंगे।

२. अहा, जगत से विरक्ति ही अनंत तीर्थंकरों का पंथ है, आप भी इसी मार्ग पर जा रहे हो... जगत भी इसी मार्ग पर आयेगा।

३. अहा, आप जन्म से ही वैरागी हो और आज ही रत्नत्रयमार्ग में जा रहे हो, वह जगत के लिये कल्याण का कारण है।

४. अहा, आपको वीतरागी दिगम्बर अवस्था में देखकर हमें बहुत प्रसन्नता होगी। आपकी आत्मा महान है और मुनिदशा भी महान है।

५ **जीव मोह ने करी दूर, आत्मस्वरूप सम्यक् पामीने,**
जो राग-द्वेष परिहरे तो पामतो शुद्धात्मने॥

आज नेमिकुमार ऐसे उत्कृष्ट सुख के मार्ग में जा रहे हैं, उनको हमारी अनुमोदना है।

६. शुद्ध आत्मा का आनंद कहो, ज्ञानचेतना कहो, परम सामायिक कहो, निर्विकल्प अनुभूति कहो, निर्ग्रंथ मार्ग कहो, सब एकार्थ है। आज उस मार्ग पर नेमिकुमार जा रहे हैं। धन्य है प्रभो! आपका वैराग्य। हम सब उसकी अनुमोदना करते हैं।

७. अहा, जगतपूज्य परमेष्ठीपद धारण कर, चिदानंदस्वरूप में लीन होते-होते आप गिरनार के सहस्राम्रवन में केवलज्ञान प्राप्त करेंगे और वहाँ से जगत को मोक्ष का संदेश सुनायेंगे।

८. प्रभो! आप शुद्धोपयोगरूप मुनिदशा को अंगीकार कर रहे हो। मुनिमार्ग अंतरंग में समाया हुआ है, मुनिमार्ग वह राग का मार्ग नहीं परंतु वीतरागता का मार्ग है।

—उस मार्ग को हम सबकी अनुमोदना है।

क्रिया

प्रश्नः—जिसके ज्ञान न हो, उसके क्रिया होती है?

उत्तरः—हाँ, उसके ज्ञानक्रिया नहीं परंतु जड़क्रिया तो होती है। अजीव पदार्थों में ज्ञान न होने पर भी अजीव-क्रिया तो वे करते ही हैं। जीव या अजीव प्रत्येक पदार्थ अपनी क्रिया से संपन्न ही होता है, क्रिया बिना कोई पदार्थ नहीं होता, इसलिये अपने ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी अजीव की या दूसरे की क्रिया मैं करूँ, ऐसा माननेवाला जीव अज्ञानी है। ज्ञानी तो ज्ञानक्रिया को ही अपनी जानकर उसी का कर्ता होता है। ज्ञानी की क्रिया ज्ञानमय है, अज्ञानी की क्रिया राग-द्वेषमय है, जड़ की क्रिया जड़मय है। तीनों को भलीभाँति पहिचाननेवाला जीव जड़ की और विकार की क्रिया का अकर्ता होकर अपने ज्ञान की वीतरागी क्रिया को करता है। ऐसी क्रिया, वह मोक्ष की क्रिया है, वह धर्म की क्रिया है।

राजकोट समाचार

पूज्य स्वामीजी दिनांक ९-३-७६ की सुबह में ६.०० बजे राजकोट पधारे, तत्पश्चात् राजकोट के मुमुक्षु भाई-बहिनों द्वारा स्वागत किया गया। स्वागत के पश्चात् नगर के मुख्य-मुख्य मार्ग से उनका जुलूस निकाला गया। पूज्य स्वामीजी के स्वागत के उपलक्ष में पंडित देवसीभाई ने एक गीत गाया। तत्पश्चात् राजकोट संघ के मंत्रीजी ने स्वागत भाषण में कहा कि—हे पूज्य स्वामीजी! आपश्री के पुनीत प्रभावना के उदय से वर्धमानजिन के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव द्वारा जिनेन्द्र शासन की अपूर्व प्रभावना हुई तथा वहाँ से आपश्री का मंगल आगमन होने से हमारी राजपुरी आपके पुनीत चरणों से पावन हुई। उस मंगलमय प्रसंग से हम सब आपका आनंदसहित भावभीना स्वागत करते हैं। इस पंचम काल के कटीकटी के समय में आपके द्वारा जो धर्मक्रांति हो रही है, उसके लिये हम आपके बहुत-बहुत आभारी हैं।

आपश्री के पावन अंतर में से बहती ज्ञानगंगा के मधुर झरने से हम सबका मोहमल दूर होकर आत्मिक निर्मलता प्रगट होगी तथा आपके श्रुतज्ञानदीपक से हमारा अज्ञान-अंधकार दूर होकर ज्ञानप्रकाश का उदय होगा। यही हमारा अनुपम लाभ है।

फाल्गुन सुदी १२ जिनमंदिर की प्रतिष्ठा का वार्षिक मंगल दिन है, वह आपकी पवित्र छत्रछाया में अत्यंत उत्साहपूर्वक मनाया जायेगा।

श्री जिनेश्वर परमात्मा के पास तथा उनके अनुगामी आचार्य भगवंतों के पास अमूल्य चैतन्यरत्न का जो अक्षय भंडार है, उसका नमूना लेकर आपश्री उनके आढ़तिये होकर यहाँ पधारे हो, उस अपूर्व माल में से हम यथाशक्ति अवश्य लेंगे तथा आपके द्वारा दी गयी प्रसादी का अत्यंत रुचिपूर्वक आस्वाद करेंगे। इसमें हम अपना गौरव समझते हैं।

पूज्य स्वामीजी ने मांगलिक में कहा कि वर्तमान ज्ञान के विकास में राग का स्वामीपना स्वीकार करना, वह पामरपना है और वर्तमान ज्ञान के विकास में शुद्ध चैतन्य का स्वामीपना स्वीकार करना, वह मांगलिक है।

राजकोट में पूज्य स्वामीजी १२ दिन रहे। सुबह श्री समयसार गाथा ४९ व २७६-२७७ पर, दोपहर में श्री समयसार कलश-टीका के कलश १८१ व २५२ पर मार्मिक प्रवचन किये। रात्रि में आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा होती थी। दिनांक २०-३-७६ के सुबह में डा. प्रवीणभाई ने कहा कि प्रशममूर्ति पूज्य चंपाबहिनजी के प्रगट गुणों का अभिवादन करने के लिये राजकोट संघ की ओर से यह गुणानुवाद पत्र की अर्पणविधि की जायेगी, उसका वांचन पंडित श्री खीमचंद जेठालाल सेठ करेंगे।

पंडित श्री खीमंचदभाई ने अभिनंदन पत्र पढ़ने के पहले कहा कि आज हम सबने पूज्य स्वामीजी के शुद्ध चैतन्यसिंधु के अमृतबिंदु का स्वाद लिया। पूज्य स्वामीजी अल्पभव के पश्चात् सर्वोत्कृष्ट उत्तमपद को प्राप्त करनेवाले हैं और जिस समय उनका अनेक सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों एवं नरेन्द्रों द्वारा अभिनंदन करने में आयेगा, उस समय हम सब उपस्थित रहें, ऐसी भावना है।

आज हम पूज्य स्वामीजी के एक परम भक्त प्रशममूर्ति पूज्य चंपाबहिनजी का अभिनंदन कर रहे हैं, यह हम सबके लिये परम सौभाग्य की बात है। वास्तव में उनके गुणों को अपने जीवन में उतारना ही सच्चा अभिनंदन है। सेठश्री मोहनलाल कानजी घीया के करकमलों द्वारा भगवती पूज्य चंपाबहिनजी को अभिनंदन पत्र भेंट दिया गया।

अंत में डॉ. प्रवीणभाई द्वारा आभार विधि हुई।

टंकोत्कीर्ण, परमार्थस्वरूप जीव कैसा है उसको अलौकिक वर्णन

राजकोट में श्री समयसार, गाथा ४९ पर पूज्य स्वामीजी ने प्रवचन करते हुए कहा कि हे जगत के जीवो!

भगवान आत्मा अनंत शक्तियों का संग्रहालय एवं गुणों का गोदाम होने से वह खट्टा-मीठादि रसरहित, लाल-पीलादि रूप रहित, सुगंध-दुर्गंध रहित, शब्द रहित, इंद्रियगोचर नहीं एवं अनिर्दिष्ट संस्थान है। ऐसे आत्मा की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनरूपी धर्म प्रगट होता है।

यह गाथा बहुत अलौकिक है, इसलिये श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित सर्व शास्त्रों में यह गाथा है। प्रवचनसार गाथा १७२वीं, नियमसार गाथा ४६वीं, अष्टपाहुड़ के भावपाहुड़ में ६४वीं, पंचास्तिकाय में १२७वीं और धवल के तृतीय भाग में प्रथम गाथा है, इसप्रकार यह गाथा अनेक शास्त्रों में है। इस गाथा में जीव के वास्तविक स्वरूप का अचिंत्य और अलौकिक रीति से वर्णन किया गया है।

इस गाथा में शिष्य ने जिज्ञासा एवं विनयपूर्वक प्रश्न पूछा है कि हे प्रभो! शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा की दशा में जो शुभाशुभभाव उत्पन्न होते हैं, वे आत्मा नहीं। अध्यवसानादिभाव अनात्मा, अचेतन एवं अजीव हैं और उससे आत्मा का हित नहीं होता है तो अब एक टंकोत्कीर्ण परमार्थस्वरूप भगवान आत्मा कैसा है, जिसके आश्रय से हमारे जन्म-मरण के दुःखों का अंत आ जाये। आप उसका स्वरूप बतलाइये। इस गाथा में शिष्य के प्रश्न का उत्तर कहा गया है—

जीव चेतनागुण, शब्द-रस-रूप-गंध-व्यक्तिविहीन है।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान उसका, ग्रहण नहि है लिंग से॥

हे भव्य जीव! तू भगवान आत्मा को रसरहित जान। देखो, प्रथम रस की बात कही है। उसका कारण यह है कि अनंत काल से आत्मा परवस्तु में, खाने में, पीने में, इज्जत में, लक्ष्मी में आदि में रस मान रहा है, जबकि वह विकारीरस है, उस विकारीरस

का नाश करनेवाला अतीन्द्रिय आनंदरस आत्मा में ठसाठस भरा हुआ है। उस पर दृष्टि देने से अतीन्द्रिय आनंद का रस पर्याय में प्रगट होता है। वास्तव में वह अतीन्द्रिय आनंद का रस ही आत्मा का है। जड़ का रस वह आत्मा का नहीं और आत्मा में भी नहीं है। ऐसा सच्चा ज्ञान स्वरूपग्राही ज्ञानवाले को ही हो सकता है, जिसे स्व का ज्ञान नहीं, उसे पर का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता है।

शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा रसरहित है। खट्टा, मीठा, कड़वा आदि पाँच प्रकार का रस है, वह पुद्गलद्रव्य का गुण है। आत्मा में पुद्गलद्रव्य का अभाव होने से रस का भी अभाव है। आत्मा वस्तु है और पुद्गल भी वस्तु है। रसगुण पुद्गलद्रव्य का है, आत्मद्रव्य का नहीं। आत्मा का रस तो शांत एवं अनाकुल है। वह रस तेरे में है। तेरा रस जड़ में नहीं और जड़ का रसगुण तेरे में नहीं होने से तू अरस है। पुद्गलद्रव्य में जितने रसादि गुण हैं, उन सबसे आत्मा भिन्न है। पुद्गल के अनंत गुण पुद्गल में हैं। जैसे वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, अस्तित्व, द्रव्यत्व, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श आदि अनंतगुण पुद्गल के पुद्गल में हैं। पुद्गलद्रव्य के इन गुणों से आत्मा भिन्न है। पुद्गल अपने रस-गुणरूप से परिणमित होता है परंतु आत्मा उस रसगुणरूप से परिणमित नहीं होता है; इसलिये आत्मा अरस है।

प्रथम बोल में आत्मा को पुद्गलद्रव्य से और दूसरे बोल में पुद्गलद्रव्य के रस गुण से आत्मा को भिन्न बतलाया है। अब तीसरे बोल में पुद्गलद्रव्य की पर्याय से आत्मा भिन्न है-ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा इस द्रव्यइंद्रिय के द्वारा भी रस नहीं चखता क्योंकि इस द्रव्य-इंद्रियरूपी जीभ का स्वामी आत्मा नहीं परंतु उसका स्वामी जड़ है। वह जीभ आत्मा से हिलती नहीं है। यदि आत्मा के हिलाने से जीभ हिलती हो तो मरण के समय जीभ हिलाना चाहता है परंतु हिलती नहीं है। इसलिये जीभ का हिलना आत्मा के आधीन नहीं, आत्मा उसका स्वामी भी नहीं है। आत्मा जड़ के अवलंबन से रस चाखता नहीं क्योंकि जीभ हिलती है, उसका स्वामीपना जड़ का है। वास्तव में जड़ इंद्रियरूप जीभ आत्मा का स्वरूप नहीं, वह जड़ इंद्रिय आत्मा नहीं, आत्मा का गुण नहीं, आत्मा की

पर्याय नहीं, भगवान आत्मा इन सबसे भिन्न चिदानंदरस से भरपूर है। वह जड़ के रस में एकमेक नहीं हो जाता, इसलिये वह अरस है।

अपने स्वभाव की दृष्टि से देखा जाये तो क्षायोपशमिकभाव का भी उसको अभाव होने से वह भावइंद्रिय के अवलंबन द्वारा भी रस नहीं चाखता, इसलिये अरस है।

तीसरे से चौथा बोल सूक्ष्म है। जड़ इंद्रिय की आत्मा में नास्ति है, इसलिये उसको निकाल दिया, अब भावइंद्रिय भी आत्मा से भिन्न है, ऐसा कहते हैं: !

शुद्ध चैतन्य ध्रुवस्वभाव की दृष्टि से देखा जाये तो भगवान आत्मा सत् है, उसमें जड़ के द्रव्य-गुण-पर्याय का तो अभाव ही है परंतु वर्तमान में जो क्षायोपशमिक दशा है, उसका भी अभाव है। ११ अंग ९ पूर्व के ज्ञान का आत्मा में अभाव है, इसलिये जिस जीव को ११ अंग ९ पूर्व के ज्ञान का अभिमान वर्तता हो, वह भगवान आत्मा का अनादर एवं हिसा करता है।

रस को जानने की वर्तमान ज्ञान की शक्ति एकमात्र रस की ओर झुकी हुई होने से जो ज्ञान होता है, वह क्षायोपशमिक ज्ञान है। उसका भी आत्मा में परमार्थदृष्टि से अभाव है क्योंकि आत्मा का परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव है, उसमें अल्प ज्ञान का अभाव है।

क्षायोपशमिक ज्ञान तो खंड-खंड ज्ञान है, उसमें एक समय में मात्र एक ही इंद्रिय के विषय को जानने का कार्य होता है। जिसप्रकार कान से शब्द सुनायी दे परंतु कान से स्वाद जानने में न आये। एक इंद्रिय से अन्य इंद्रिय का कार्य नहीं होता है। क्षायोपशमिक ज्ञान इंद्रियों द्वारा क्रम-क्रम से जानता है, इसलिये खंड ज्ञान आत्मा का स्वभाव नहीं परंतु अखंड ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। सब इंद्रियों का ज्ञान आत्मा में है परंतु इंद्रियाँ तो अपने-अपने विषय का ही कार्य करती हैं।

शुद्ध चैतन्य आत्मा का स्वभाव मात्र रस को ही जानने का नहीं है परंतु एक समय में तीन काल-तीन लोक के समस्त पदार्थों को जानने का है।

अब पाँचवें बोल में कहते हैं कि समस्त विषयों के विशेषों में साधारण ऐसा एक ही संवेदन परिणामरूप उसका स्वभाव होने से वह केवल एक इस वेदना परिणाम को पाकर रस नहीं चाखता, इसलिये अरस है।

भगवान आत्मा का पाँचों इंद्रियों के विषयों को एकसाथ जानने का स्वभाव होने से उसमें मात्र रस का ही ज्ञान करने की शक्ति हो, ऐसा नहीं है, किंतु जितने लोकालोक के पदार्थ हैं, उन सबके भावों को एकसाथ जानने की शक्ति है। मात्र रस का ही अनुभव करके रस को नहीं चाखता परंतु भगवान आत्मा तो अपने स्वभाव का ही अनुभव करनेवाला नित्यानंदप्रभु है।

अब छठवें बोल में कहते हैं कि आत्मा को समस्त ज्ञेयों का ज्ञान होता है परंतु सकल ज्ञेय-ज्ञायक के तादात्म्य का (एकरूप होने का) निषेध होने से रस के ज्ञानरूप में परिणमित होने पर भी स्वयं रसरूप परिणमित नहीं होता, इसलिये अरस है।

ज्ञेयों से ज्ञान होता है, यह निमित्त का कथन है। ज्ञान पर को जानते समय ज्ञान ज्ञेय में जाता हो और ज्ञेय ज्ञान में आता हो, ऐसा भी नहीं है। रस ज्ञेय है, आत्मा ज्ञायक है, रस जीभ को स्पर्श करने पर रस का ज्ञान होता है, उस रस के ज्ञानरूप से ज्ञान की अवस्था होने पर भी स्वयं रसरूप परिणमित नहीं होता है।

आत्मा ज्ञायक जाननेवाला है, शरीर, मन, वाणी, राग-द्वेष आदि ज्ञान में ज्ञात होने योग्य ज्ञेय हैं। वे दोनों त्रिकाल अत्यंत भिन्न हैं। यदि आत्मा और जड़-दोनों एक हो जाते हो तो अग्नि को जानने पर आत्मा उष्ण हो जाना चाहिये, परंतु ऐसा नहीं होता। आत्मा अपने ज्ञान की अवस्थारूप से परिणमन करता है, तथापि वह रसरूप नहीं होता, इसलिये आत्मा अरस है। इसप्रकार अरसस्वभावी भगवान आत्मा की दृष्टि करने पर सम्यग्दर्शनरूपी धर्म प्रगट होता है।

उपरोक्त प्रकार से रूप, गंध और स्पर्श के संबंध में भी समझ लेना।

अब शब्द की बात कहते हैं—

१. वास्तव में आत्मा पुद्गलद्रव्य से भिन्न होने के कारण उसमें शब्दपर्याय नहीं होती परंतु चेतन की पर्याय होती है, इसलिये आत्मा अशब्द है।

२. आत्मा पुद्गलद्रव्य के गुणों से भी भिन्न होने से स्वयं शब्द पर्यायरूप नहीं होता, इसलिये आत्मा अशब्द है।

३. आत्मा पैसा, दुकान, मकान आदि का तो स्वामी नहीं है, परंतु श्रोत्रेन्द्रिय का भी स्वामी नहीं है। श्रोत्रेन्द्रिय के आलंबन से आत्मा शब्द को नहीं जानता परंतु शब्द संबंधी स्वयं का ज्ञान करता है। वह सम्यग्ज्ञान नहीं होने से परसत्तावलंबी ज्ञान है। स्व के आश्रय से जो ज्ञान होता है, वह सम्यग्ज्ञान है, इसलिये आत्मा अशब्द है।

४. क्षायोपशमिकभाव का आत्मा में अभाव होने से वह मात्र भावइंद्रिय के अवलंबन द्वारा जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है; इसलिये आत्मा अशब्द है।

५. शब्द में स्व-पर को कहने की शक्ति है और वह शक्ति आत्मा के कारण आयी हो, ऐसा नहीं है। आत्मा का स्वभाव स्व-पर को एक साथ जानने का है; इसलिये वह मात्र शब्द को ही जाने, ऐसा नहीं है; इसलिये आत्मा अशब्द है।

६. शब्द ज्ञेय होने से वह ज्ञान में ज्ञात होता है। शब्द को जानने पर ज्ञान शब्दरूप नहीं हो जाता परंतु ज्ञान ज्ञानरूप रहकर ही शब्द को जानता है। ज्ञान का स्वभाव जैसी भाषा हो, वैसा ही ज्ञान करने का है। शब्द और ज्ञान इन दोनों का एकरूप होने का निषेध है, इसलिये आत्मा भाषारूप नहीं होने से वह अशब्द है।

इस तरह छह प्रकार से शब्द का आत्मा में निषेध है। अतः आत्मा अशब्द है।

अब आत्मा अनिर्दिष्टसंस्थान है, उसकी बात कहते हैं:—

१. शुद्ध चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा इस शरीर के आकारवाला नहीं है क्योंकि शरीर रूपी है और आत्मा अरूपी है। कोई भी वस्तु आकाररहित नहीं है; आत्मा भी एक वस्तु होने से वह अपने असंख्यातप्रदेशी अरूपी आकारवाली है। जिसप्रकार लोटा और पानी का आकार भिन्न-भिन्न वस्तु है, लोटे के आकार से पानी का आकार नहीं है, उसीप्रकार शरीर के आकार से आत्मा का आकार नहीं है परंतु आत्मा का स्वतंत्र आकार है।

२. आत्मा अपने नियत असंख्यातप्रदेशी स्वभाववाला है, उसकी सत्ता अनादि-अनंत है। संसार में रहे, तब भी आत्मा की सत्ता पर से भिन्न और मुक्ति में जाये, वहाँ भी उसकी सत्ता पर से भिन्न है। प्रत्येक आत्मा की अपनी भिन्न-भिन्न सत्ता है। किसी की सत्ता किसी में नहीं मिलती। अनियत अर्थात् अनिश्चित आकार।

असंख्यातप्रदेशी नियत आकारवाला आत्मा ने अनियत संस्थानवाला अर्थात् अनिश्चित आकारवाले अनंत शरीर धारण किये, तथापि उस शरीर के आकाररूप नहीं हुआ; इसलिये आत्मा अनिर्दिष्ट संस्थानवाला है।

जिसप्रकार एक दीपक को भिन्न-भिन्न कमरों में ले जाने पर वह दीपक कमरे के विस्ताररूप नहीं हो जाता। उसीप्रकार यह आत्मा एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रियादि के अनंत शरीर धारण करने पर भी उन शरीररूप नहीं होता है।

३. आठ कर्म हैं, उसमें एक नामकर्म है; उस नामकर्म की ९३ प्रकृतियाँ हैं; उसमें संस्थान नामकर्म की एक प्रकृति है, उसका फल शरीर में आता है, उसके निमित्त से भी आत्मा का आकार नहीं है। अतः वह अनिर्दिष्ट संस्थान है।

४. शरीर, लकड़ी, रोटी, लड्डू आदि के भिन्न-भिन्न आकार अपने से परिणमित होते हैं। उन्हें अन्य कोई परिणमित कराता हो, ऐसा नहीं है। जैसे रोटी है, वह अपने आकाररूप परिणमन करती है परंतु उसका आकार कोई स्त्री बनाती हो, ऐसा नहीं है।

आत्मा ज्ञान की मूर्ति है, उसके ज्ञान में जगत की समस्त वस्तुओं का जैसा आकार है, वैसा जानने में आता है, तथापि आत्मा ने जगत के किसी भी पदार्थ के आकार को बनाया नहीं है। ज्ञान पर के आकाररूप नहीं हुआ है, इसलिये आत्मा अनिर्दिष्ट संस्थान है।

अब अव्यक्त को सिद्ध करते हैं:—

अव्यक्त का बोल सर्व में मुख्य है, क्योंकि जिसे आत्मा का ज्ञान करना हो अथवा सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, उस जीव को आत्मा अव्यक्तस्वभावी है, ऐसा जानना होगा।

१. छह द्रव्यस्वरूप लोक है, वह परज्ञेय होने से व्यक्त, बाह्य एवं प्रगट है, उससे भगवान आत्मा भिन्न है, इसलिये वह अव्यक्त है, इस अपेक्षा से निजात्मा को सातवाँ द्रव्य कहा जाता है।

छह द्रव्य में सर्वज्ञपरमात्मादि का भी समावेश हो जाता है। वे सब परज्ञेय व्यक्त हैं। उन सबसे अन्य उनको जाननेवाला भगवान आत्मा ज्ञायक एवं अव्यक्त है। ऐसे

आत्मा को स्वसन्मुख होकर जान—ऐसा कुंदकुंदाचार्यदेव का आदेश है।

२. शुभाशुभभाव कषायों का समूह होने से भावक का भाव है। चारित्रमोहनीयकर्म का उदय, वह भावक और क्रोध-मान-माया-लोभादि का भाव भाव्य होने से व्यक्त है। शुद्ध आत्मा में विकार करने का कोई गुण नहीं है, इसलिये पर्याय में जो विकार होता है, उसमें कर्म को भावक कहा और कर्म के अनुसरण से होनेवाले भाव को भाव्य कहा है।

श्री समयसार गाथा ३२ में भी भावकभाव की बात है किंतु वहाँ पर ज्ञानी भावकभाव को जीतता है, ऐसा कहा है, यहाँ पर भावकभाव से आत्मा को भिन्न बतलाने की बात कही है।

चाहे विषय-वासना का भाव हो, रति-अरति का भाव हो, वे सब कषाय का समूह हैं और वे कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुए भाव होने से व्यक्त प्रगट हैं। उनसे भिन्न भगवान आत्मा अव्यक्त है। इसलिये कषायों के समूह का लक्ष्य छोड़कर अव्यक्त ऐसे भगवान आत्मा की दृष्टि करने से सच्ची प्रतीति होती है। वह पर्याय निर्मल है और कषाय का समूह कर्मरूप भावक का भाव होने से मलिन है। भगवान आत्मा अकषायरूप होने से अनाकुलतारूप है और कषाय का समूह आकुलतामय है।

दया-दानादि का शुभभाव भी कषाय का समूह है, उससे आत्मा का कल्याण होता है, ऐसा माननेवाला जीव मूढ़ एवं मिथ्यादृष्टि है क्योंकि उसको कषाय के समूह से आत्मा भिन्न है, ऐसी श्रद्धा नहीं है।

३. भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय की विशेष पर्यायों से रहित ज्ञानसामान्यस्वरूप है। वह एकरूप, अभेद, ध्रुव एवं सदृश है। इसमें वर्तमान पर्याय को छोड़कर भूत-भविष्य की पर्यायें अंतर्भूत हैं। वर्तमान पर्याय तो सामान्यस्वभाव का निर्णय करनेवाली हैं। अतः वह आत्मा में अंतर्भूत नहीं हैं। भूतकाल की पर्यायें सामान्य में अंतर्भूत हैं और भविष्य में होनेवाली पर्यायें योग्यतारूप अंतरंग में हैं। जिसप्रकार पानी की तरंगें पानी में समा जाती हैं, उसीप्रकार भगवान आत्मा में भूतकाल की पर्यायें अंतर में समा गयी हैं और भविष्य में होनेवाली पर्यायें शुद्ध चैतन्य-सामान्य में योग्यतारूप हैं और वे चित्सामान्य में पारिणामिकभावरूप

रहती हैं। जब प्रगट पर्यायें व्यक्त हैं, तब चित्सामान्य अव्यक्त है। ऐसे चित्सामान्य पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

४. शुद्ध चैतन्य आत्मा अनादि-अनंत ध्रुव वस्तु है। वह शरीर, मन, वाणी, एवं रागरूप तो है ही नहीं परंतु वर्तमान निर्मल पर्याय जितना भी नहीं है। वर्तमान अवस्था क्षणिक होने से व्यक्त है और आत्मा त्रिकाली वस्तु होने से अव्यक्त है। ऐसे अव्यक्त त्रिकाली आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है।

५. वस्तु के दो अंश हैं—(१) प्रगट, पर्यायअंश (२) ध्रुव, द्रव्यअंश। व्यक्तपना=पर्याय, अव्यक्तपना=त्रिकाली ध्रुव।

वर्तमान ज्ञान की दशा में व्यक्त पर्याय और अव्यक्त ऐसा ध्रुव का निश्चित ज्ञान होने पर भी पर्याय को ध्रुव स्पर्श नहीं करता। वर्तमान ज्ञानदशा में त्रिकाली वस्तु का ज्ञान होता है परंतु ज्ञानस्वभावी आत्मा ज्ञान की दशा में नहीं चला जाता और ज्ञान की दशा त्रिकाली में नहीं आ जाती है। यदि ज्ञान की क्षणिक अवस्था त्रिकाली वस्तु में आ जाये तो वह अवस्था त्रिकाली हो जायेगी और यदि त्रिकाली ध्रुव क्षणिक अवस्था में जाये तो ध्रुव क्षणिक हो जायेगा। जिसप्रकार काँच में अग्नि, बर्फ आदि पदार्थ देखने में आते हैं परंतु काँच उसरूप नहीं हो जाता; उसीप्रकार वर्तमान ज्ञान की अवस्था में त्रिकाली ध्रुव आत्मा जानने में आता है परंतु त्रिकाली ध्रुव उस अवस्था को स्पर्श नहीं करता है, ऐसा अव्यक्त आत्मद्रव्य है। उसको ध्येय बनाने से पर्याय में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। भगवान आत्मा की ऐसी भागवत कथा है।

६. संयोग, निमित्त, विकल्प, पर्याय और भेद कि जो बाह्य हैं, उसकी अपेक्षा बिना स्वयं अपने से ही स्पष्ट अनुभव में आता है, फिर भी त्रिकाली ध्रुव आत्मा वर्तमान पर्याय और भेद के प्रति उदासीन है अर्थात् एक समय की पर्याय में वह नहीं रुकता, उसका लक्ष नहीं करता; इसलिये आत्मा अव्यक्त है।

श्री बनारसीदासजी ने कहा है कि:—

समता रमता ऊर्ध्वता, ज्ञायकता सुखभास,
वेदकता चैतन्यता—ये सब जीव विलास।

देखो, इस दोहे में सुख के वेदन की बात कही है। जिसकी वर्तमान पर्याय में आत्मा का अनुभव होता है, उसे पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है। द्रव्य का वेदन नहीं होता, किंतु द्रव्य का ज्ञान होता है।

इसप्रकार भगवान आत्मा छह प्रकार से अव्यक्त है, ऐसा सिद्ध किया गया।

आत्मा में रस, रूप, गंध, स्पर्श, शब्द, संस्थान और व्यक्तता का अभाव है, ऐसा नास्ति से कहा। अब अस्ति से आत्मा कैसा है, उसकी बात कहते हैं।

भगवान आत्मा ज्ञान-आनंदस्वभावी है। वह गुरु, शास्त्र और दया-दानादि के शुभ विकल्प से जानने में नहीं आता है परंतु स्वसंवेदन ज्ञान अर्थात् प्रत्यक्षज्ञान से जानने में आता है।

आत्मा में विकल्प का तो अभाव है ही परंतु वह अनुमानगोचरमात्र भी नहीं है। जहाँ-जहाँ आत्मा, वहाँ-वहाँ ज्ञान और जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ आत्मा; ऐसे अनुमान ज्ञान का भी आत्मा में अभाव है।

इसप्रकार अलिंगग्रहण की व्याख्या संक्षेप में की। परंतु श्री प्रवचनसार की १७२वीं गाथा में अलिंगग्रहण का २० बोल में विस्तार से वर्णन किया है।

(१) भगवान आत्मा इंद्रिय से जानता नहीं है। (२) वह इंद्रिय द्वारा जानने में नहीं आता है। (३) इंद्रिय प्रत्यक्षपूर्वक अनुमान का विषय नहीं है। (४) दूसरे के द्वारा अनुमान से जानने में आ जाये, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। (५) मात्र अनुमान करनेवाला नहीं है। (६) आत्मा स्वभावप्रत्यक्ष से जानने में आता है। (७) उपयोग को परज्ञेय का अवलंबन नहीं है। (८) उपयोग बाहर से नहीं आता है। (९) उपयोग का कोई हरण नहीं कर सकता है। (१०) शुद्धोपयोग स्वभाव होने से उसमें मलिनता नहीं है। (११) उपयोग में कर्म का ग्रहण नहीं है। (१२) उपयोग पाँच इंद्रिय के विषय का भोक्ता नहीं है। (१३) मन इंद्रियों से जिसका जीवत्व नहीं है। (१४) मेहनाकार नहीं है। (१५) अमेहनाकार नहीं है। (१६) द्रव्य-भाववेद का जिसमें अभाव है। (१७) यति के लिंगों का जिसमें अभाव है। (१८) भगवान आत्मा गुणी और ज्ञानादि गुण-ऐसे गुणभेद जिसमें नहीं हैं। (१९) पर्याय को स्पर्श नहीं करता है।

(२०) जितना ज्ञान के अनुभव में आता है, उतना ही आत्मा है।

आत्मा का मुख्य गुण चेतना अर्थात् ज्ञाता-दृष्टापन है और गौणरूप वीर्यादि अनंत गुण हैं। वर्तमान चेतनरूप पर्याय के द्वारा ही आत्मा सदा अंतर में प्रकाशमान है किंतु पर निमित्त एवं व्यवहार से वह जानने में आये, ऐसा उनका स्वभाव नहीं है। आत्मसन्मुख होने पर वह चेतनागुणवाला ही दिखायी देता है। वह चेतनागुण कैसा है? जो पर, निमित्त एवं दया-दानादि के शुभभाव से आत्मा का कल्याण होता है, ऐसी मिथ्या मान्यताओं का नाश करनेवाला है।

भेदज्ञानी जीवों ने पर, निमित्त और राग से भिन्न होकर शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा का अनुभव किया है, इसलिये उनको सर्वस्व सौंप दिया है, क्योंकि जीव में अनंत गुण हैं, उनको वे ही अनुभवपूर्वक जानते हैं।

जिसप्रकार अग्नि का स्वभाव सबको जलाने का है। वह सूखे को तो जलाती ही है परंतु गीले को भी सूखा करके जलाती है, उसीप्रकार वर्तमान ज्ञान की पर्याय ने एक समय में समस्त लोकालोक को ग्रासीभूत कर लिया है, जिससे अंतर में परिपूर्ण शांति हो गयी है। अनादि से अनंत काल तक रहनेवाला चेतना नाम का गुण है, वह किंचित् भी चलायमान नहीं होता है। अन्य द्रव्य में चेतना नाम का गुण नहीं है, इसलिये वह असाधारणरूप होने से स्वभावभूत है।

तीनों काल शक्तिरूप चैतन्यमय परमार्थस्वरूप जीव है। जिसका स्व-पर को जाननेरूप कार्य निर्मल है। ऐसा यह भगवान आत्मा इस लोक में एक टंकोत्कीर्ण, भिन्न ज्योतिस्वरूप विराजमान है। ऐसे आत्मा का अनुभव करना, वह धर्म है।

केवलज्ञान की महिमा

मुनिराज नेमिनाथ को गिरनार के सहस्त्राम्रवन में केवलज्ञान प्रगट होने के समाचार मिलते ही महाराजा समुद्रविजय एवं समस्त राजसभा हर्षविभोर हो उठती है; उस समय उनके बीच केवलज्ञान की तथा भगवान नेमिनाथ की भक्तिभावपूर्ण चर्चा होती है। उस प्रसंग का दृश्य वर्धमानपुरी में मानव मेदिनी के समक्ष संवादरूप में प्रदर्शित किया गया था, जो यहाँ दिया जा रहा है।

[राजसभा में दूत का प्रवेश]

दूतः—नेमिनाथ भगवान की जय हो!

हे महाराज! मैं गिरनार से आया हूँ और एक उत्तम मंगल संदेश लाया हूँ।

महाराज (समुद्रविजय):—कहो राजदूत! क्या संदेश है, जल्दी कहो!

दूतः—अपने राजकुमार नेमिनाथ कि जिन्होंने विवाह के समय ही वैराग्य प्राप्त करके गिरनार के आम्रवन में मुनिदीक्षा ले ली थी, वे मुनिराज विहार करते-करते पुनः गिरनार पधारे थे और आज ही वे शुद्धोपयोग की क्षपकश्रेणी लगाकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं।

[वाह वाह! धन्य है... धन्य है! इसप्रकार हर्षध्वनि करते हैं।]

दूतः—अहा, भगवान ने गिरनार के जिस आम्रवन में दीक्षा ली थी, वहीं केवलज्ञान प्राप्त किया!—एक ही क्षेत्र में दो कल्याणकों से गिरनार की भूमि पावन हुई... तीर्थ बन गयी।

दूतः—हे महाराज! नेमिनाथ मुनिराज ने आज (आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन) जब गिरनार के सहस्त्राम्रवन में प्रवेश किया, तब हजार आम्रवृक्ष फलफूलों से भर गये... मानों फल से प्रभु की पूजा कर रहे हों। एक ओर आम्रवन खिल उठा तो दूसरी ओर प्रभु का रत्नत्रय उद्यान विकसित हो गया। अहा! वहाँ की

शोभा की क्या बात करूँ!... नेमिनाथ प्रभु वहाँ ध्यान में विराजमान थे; परम चैतन्य का उत्तम ध्यान प्रगट करके शुद्धोपयोग की श्रेणी लगाकर क्षणमात्र में तो प्रभु अतीन्द्रिय आनंद में अप्रमत्तभाव से झूलते-झूलते गुणस्थान की श्रेणी चढ़ने लगे—आठवाँ, नववाँ, दसवाँ और बारहवाँ गुणस्थान पार करके प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त करलिया।

दूत:—अहा! गिरनार धाम एवं समस्त पृथ्वी आनंदमय हो गई! सहस्राम्रवन में तो स्वर्ग से इंद्र आ गये हैं और केवलज्ञान की पूजा कर रहे हैं। समवसरण की अद्भुत रचना हो गई है और गिरनार धाम सर्वज्ञ प्रभु नेमिनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से गूँज रहा है। अहा! उस अद्भुत शोभा की क्या बात करूँ! प्रभु की वाणी में तो परमशांत चैतन्यरस बह रहा है!

महाराजा:—अहा, सचमुच आज तो सब मंगल ही मंगल भासित होता है, सारा विश्व मुझे मंगलमय लग रहा है!

महारानी:—ठीक है महाराज! आज भगवान नेमिनाथ को तीर्थंकरप्रकृति का उदय प्रारंभ हुआ! चैतन्य में केवलज्ञान का प्रकाश और पुद्गल में तीर्थंकरप्रकृति का उदय, ऐसा सर्वोत्कृष्ट योग आज गिरनार के सहस्राम्रवन में वर्त रहा है।

राजा १:—और साथ ही साथ रत्नत्रयवंत गणधर, अनेकों मुनिवर तथा वैरागी राजुलमाता भी प्रभु के समवसरण में शोभायमान हैं; जैनशासन का धर्मचक्र चल रहा है।

रानी १:—भगवान के आत्मा में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सर्वप्रकार मंगलरूप हैं।

राजा २:—भगवान नेमिनाथ का आत्मद्रव्य परमपारिणामिकभाव से त्रिकाल मंगलरूप है। वह द्रव्यमंगल है।

रानी २:—केवलज्ञान एवं अतीन्द्रिय महा आनंद से भरपूर असंख्य असंख्य चैतन्यप्रदेश, वह क्षेत्रमंगल है और जहाँ वे विराजमान हैं, ऐसा गिरनार तीर्थ वह क्षेत्रमंगल है।

[श्री वीरसेनस्वामी ने षट्खंडागम की टीका में गिरनार, पावापुरी, राजगृही आदि तीर्थों का मंगलरूप में स्मरण किया है।]

राजा ३:—और इसीप्रकार यह नगर भी तीर्थंकर के विहार एवं धर्मात्मा के अवतार के कारण मंगलरूप है।

रानी ३:—ठीक है और उसमें भी तीर्थंकरदेव के पंचकल्याणक का मंगल अवसर है। और महान आनंद की बात तो यह है कि एक भावी तीर्थंकर भी मंगलरूप से यहाँ साक्षात् विराजमान हैं।

राजा ४:—चैतन्य के अवलंबन से प्रभु को जो अपूर्व पर्याय प्रगट हुई, वह कालमंगल है और आश्विन शुक्ला प्रतिपदा का दिन भी मंगल है।

रानी ४:—और भगवान नेमिनाथ का आत्मा शुद्धोपयोग से केवलज्ञान प्रगट करके परम आनंदरूप परिणमित हो रहा है, वह भावमंगल है।

राजा ५:—अहा! जिनेन्द्र भगवान के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के मंगलपने का विचार करने से अपने भावों में भी चैतन्यतत्त्व की कोई अगाध महिमा प्रगट होती है; वह भी भाव-मंगल है।

रानी ५:—वाह! बड़ी सुंदर बात है। आचार्य भगवान ने भी कहा है कि जो जीव भगवान अरहंतदेव के आत्मा को चैतन्यभाव से जानता है, वह जीव राग और चैतन्य की भिन्नता जानकर अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। यही अरिहंतदेव के आत्मा की सच्ची पहिचान का फल है।

राजा ६:—नेमिनाथ भगवान आज सर्वज्ञ हुए, तो वे किसप्रकार हुए?—देखो... सुनो! शुद्धोपयोग के प्रसाद से ही वे सर्वज्ञ हुए हैं। सर्वज्ञ होने के पूर्वक्षण में वे राग का क्षय करके संपूर्ण वीतराग हुए और तत्पश्चात् सर्वज्ञ हुए।

रानी ६:—इसप्रकार जो संपूर्ण वीतराग हो, वही सर्वज्ञ होता है। राग का कोई अंश सर्वज्ञता का कारण नहीं होता। अपना ज्ञानस्वभाव ही स्वयंभूरूप से सर्वज्ञ होता है; इसलिये अपने ज्ञानस्वभाव का अवलंबन ही सर्वज्ञता का साधन है। उसके छहों कारक स्वाधीनरूप से अपने में ही हैं।

राजा ७:—अहा, सर्वज्ञ भगवंत स्वयंभू हैं। जिसप्रकार आकाश में सूर्य किसी के अवलंबन बिना स्वयमेव प्रकाश एवं उष्णतारूप है, उसीप्रकार चैतन्यभगवान आत्मा अन्य किसी के अवलंबन बिना अपने आप—स्वयंभूरूप से ज्ञान एवं आनंदरूप है।

रानी ७:—अहा, ऐसे स्वयंभू सर्वज्ञ भगवान के दिव्यज्ञान की महिमा का क्या कहना!

राजा ८:—अरे, सर्वज्ञ हुए उन अरिहंतों के अतीन्द्रिय आनंद का क्या कहना! पंचेन्द्रिय के विषयों से तथा पुण्यफल से रहित वह स्वाभाविक आनंद आत्मा में से ही उत्पन्न हुआ है—कहीं बाहर से नहीं आया—

अत्यंत, आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनूप, अनंत अरु,
विच्छेदहीन है सुख अहो! शुद्धोपयोग प्रसिद्ध को।

रानी ८:—अरिहंत भगवान को आत्मा में से जो सुख और आनंद प्रगट हुआ है, वह तो आत्मा का स्वभाव ही है। ऐसे आनंदस्वभाव को सुनकर जो जीव प्रसन्न होकर उसकी श्रद्धा करे, वह मोक्षगामी है।

जिस आभ में यह जगत परमाणुवत् है;
उस अंतहीन नभ के जो पूर्ण ज्ञाता;
जो सर्व द्रव्यों को सदा एक साथ जानें,
उन नाथ को नमन हो मेरा निरंतर।

(शेष अगले अंक में)

—: आवश्यक सूचना :—

जैसा कि इस अंक के ७वें पृष्ठ पर छपा है, तदनुसार आत्मधर्म का जून महीने का अंक बंद नहीं किया गया है, किंतु मई महीने में इस वर्ष के १२ अंक पूरे होते हैं। तत्पश्चात् जुलाई महीने से आत्मधर्म का नया वर्ष प्रारंभ होगा और उसका प्रकाशन श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के संपादकत्व में जयपुर से होगा। — व्यवस्थापक

शाश्वत सिद्धधाम श्री सम्मेदशिखरजी में आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर एवम् नंदीश्वरद्वीप मंडल विधान पूजा का भव्य आयोजन सानंद संपन्न

पूर्व सूचनानुसार दिनांक ८-३-७६ से १७-३-७६ तक फाल्गुन की अष्टाह्निकाओं में दस दिन प्रातः ४ बजे से स्वाध्याय, ६ बजे सामूहिक पूजन, ८ बजे प्रवचन, ९ बजे शिक्षण कक्षा, दोपहर में १ बजे श्री नंदीश्वर मंडल विधान पूजा, २ बजे प्रवचन, ३ बजे शिक्षण कक्षा, सायंकाल ६ बजे जिनेन्द्र-भक्ति, ७ बजे से रात्रि ९ बजे तक शास्त्र प्रवचन एवं शिक्षण कक्षा; इसप्रकार कार्यक्रमों में समय पर साधर्मी भाई-बहनों ने एवं बालकों ने उत्साह से उपस्थित होकर आयोजन को सफल बनाया।

पंडित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल महेता, फतेपुर तथा पंडित हुकमचंदजी शास्त्री, एम.ए., पीएचडी. ने शास्त्री प्रवचनों में आध्यात्मिक विषय को जिस सरलता से समझाया, वह अत्यंत उपयोगी एवं समयोचित था। इससे श्रोताओं में आध्यात्मिक रुचि की विशेष जागृति देखी गयी।

बालक-बालिकाओं को भी जो बिहार के आसपास के क्षेत्रों से आये थे, ८-१० दिनों के अल्प समय में पंडित श्री बाबूभाई महेता, फतेपुर द्वारा जिस पद्धति से धार्मिक पाठ पढ़ाया गया, वह चमत्कारिक था। अंत में बालकों की परीक्षा ली गयी, जिससे प्रसन्न होकर सेठ श्री मिश्रीलालजी काला, कलकत्ता ने समस्त बालकों को पारितोषिक वितरण किया। इससे उपस्थित जनता बहुत प्रभावित हुई, इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि सभी जगह इस प्रकार सुगम पद्धति से बालकों में धार्मिक संस्कार डाला जाना चाहिये।

पंडित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल महेता, फतेपुर एवं पंडित श्री हुकमचंदजी शास्त्री, जयपुर द्वारा समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक का अंतःस्पर्शी मार्मिक प्रवचन होता था तथा पंडित श्री नेमीचंदभाई, रखियाल द्वारा जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा छहढाला पर शिक्षण चलता था।

जनता की उपस्थिति अंत के पाँच दिनों में २ हजार करीब हो गई थी। जनता

की आध्यात्मिक रुचि देखकर कलकत्ता मुमुक्षु मंडल के आगामी वर्ष भी इन्हीं अष्टाह्निकाओं के अवसर पर श्री सम्मेदशिखर में आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन करने के विशेष आग्रह पर पंडित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल महेता एवं श्री हुकमचंदजी शास्त्री ने स्वीकृति प्रदान की।

गतवर्ष इन्हीं दिनों में गुजरात प्रांत से धर्मचक्र के आगमन के समय श्री सम्मेदशिखरजी में तेरापंथी कोठी में श्री कुन्दकुन्द प्रवचन एवं शिक्षण भवन के निर्माण की स्वीकृति हुई थी, उसका निर्माण कार्य शीघ्र चालू होकर वह अगले वर्ष तक तैयार हो जाने की आशा है।

श्रीमान् सेठ पूरणचंदजी गोदिका जयपुर, श्रीमान् सेठ मिश्रीलालजी काला कलकत्ता, श्रीमान् रायबहादुर सेठ श्री हरकचंदजी पांड्या रांची, श्रीमान् सेठ सागरमलजी पांड्या गिरिडीह, श्रीमान् ज्ञानचंदजी गोधा, गिरिडीह (जो कोठी के मंत्री एवं प्रबंधक भी हैं) सेठ श्रीमान् नथमलजी सेठी कलकत्ता, श्रीमान् मदनलालजी पांड्या कलकत्ता तथा रांची, हजारीबाग, रामगढ़, कोडरमा, गौहाटी, आदि अनेक स्थानों से भारी संख्या में उपस्थित समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों के पूर्ण सहयोग से शिविर का आयोजन सफल हुआ।

कार्यक्रमों के अंत में रात्रि के समय गत वर्ष गुजरात के धर्मचक्र प्रवर्तन एवं पंचकल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठाओं की फिल्मों का प्रदर्शन, नाटक इत्यादि सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन था।

पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता फतेपुर, पंडित श्री हुकमचंदजी भारिल्ल एम.ए., पीएच.डी. जयपुर, पंडित श्री नेमीचंदभाई रखियाल, श्री जवाहरलालजी विदिशा, पंडित श्री बाबूभाई नाथालाल मेहता फतेपुर, पंडित श्री कानूभाई दाहोद आदि विद्वानगण बहुत दूर-दूर से पधारकर अनेक असुविधाओं को सहन करके अपने सदुपदेश से सद्भावना व्यक्त की, उसके लिये हमारा कलकत्ता मुमुक्षु मंडल अत्यंत अभारी है।

भवदीय

कलकत्ता मुमुक्षु मंडल

आत्मधर्म मासिक-पत्र के स्वामित्व आदि की घोषणा

प्रकाशन स्थान—दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
प्रकाशन अवधि—प्रत्येक अंग्रेजी माह की ५वीं तारीख
प्रकाशक—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक—श्री मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़
तंत्री—श्री पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर
राष्ट्रीयता—भारतीय
स्वत्वाधिकार—दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मैं घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सही है।

व्यवस्थापक—
दिनांक १-४-७५ श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

* आवश्यक सूचना *

आत्मधर्म [हिन्दी] अब जुलाई ७६ से डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के संपादकत्व में, जयपुर से नई साज-सज्जा के साथ आकर्षक एवं नये रूप में प्रकाशित होगा। जिसमें पूज्य गुरुदेव के मंगलमय आध्यात्मिक प्रवचनों के साथ महत्वपूर्ण संपादकीय एवं नये-नये अनेक स्तंभ रहेंगे। तत्त्वप्रचार संबंधी समाचारों को भी पर्याप्त स्थान प्राप्त होगा।

तत्संबंधी सभी पत्र व्यवहार श्री टोडरमल स्मारक भवन ए-४ बापूनगर, जयपुर से कीजिए तथा नये वर्ष का चंदा आदि भी जयपुर ही भेजें। वार्षिक शुल्क ६ रुपये एवं आजीवन सदस्यता शुल्क १०१, रुपये हैं।

ललितपुर में प्रशिक्षण शिविर

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित दसवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष २४ मई से १२ जून तक ललितपुर (उ.प्र.) में होने जा रहा है। उक्त अवसर पर श्री खेमचंदभाई, श्री बाबूभाई, श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, श्री पंडित रतनचंदजी शास्त्री आदि अनेक विद्वान पधारेंगे। धर्माध्ययन में रुचि रखनेवाले अध्यापक बंधु एवं तत्त्वप्रेमी मुमुक्षु बंधु अवश्य पधारें।

विस्तृत जानकारी के लिये सम्पर्क करें :—

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर

श्री हजारीलालजी जैन
ललितपुर (उ.प्र.)

धर्मचक्र भ्रमण

ललितपुर, झाँसी और गुना जिलों की जनता के आग्रहपूर्ण आमंत्रण पर गुजरात निर्वाण महोत्सव समिति द्वारा संचालित धर्मचक्र अशोकनगर (म.प्र.) से उद्घाटित होकर २० दिन तक उक्त जिलों के विभिन्न ग्रामों में भ्रमण करता हुआ २४ मई को ललितपुर पहुँचेगा।

फार्म भरकर भेजें

जून माह में होनेवाली ग्रीष्मकालीन परीक्षा के लिये प्रवेश फार्म अप्रेल के अंत तक स्वीकार किये जायेंगे। अत: परीक्षा बोर्ड से संबद्ध एवं असंबद्ध जो भी संस्थाएँ परीक्षा दिलाना चाहें, वे ३० अप्रेल तक फार्म भरकर अवश्य भेज देवें। फार्म परीक्षाबोर्ड कार्यालय, जयपुर से नि:शुल्क मंगा लें।

मंत्री, श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड
ए-४, जयपुर -३०२००४

तीर्थराज सम्मेदशिखर

शाश्वत् तीर्थधाम सम्मेदशिखर में विगत अष्टाह्निका के मंगल अवसर पर दिनांक ८-३-७६ से १७-३-७६ तक एक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन संपन्न हुआ। जिसमें आसपास के तथा दूरवर्ती प्रदेशों से शताधिक गाँवों से ५ हजार के लगभग व्यक्ति उपस्थित थे। श्री तेरापंथी कोठी, मधुवन में संपन्न इस शिविर में अध्यात्म-प्रवक्ता श्री बाबूभाई मेहता एवं श्री डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के प्रवचन विशेष आकर्षण के केन्द्र थे। साथ ही श्री नेमीचंदभाई रखियाल और छोटे बाबूभाई फतेहपुर की कक्षायें तथा कनूभाई दाहोद की भक्ति ने भी जनता को बहुत प्रभावित किया। सोनगढ़ के प्रति सामान्य जनता में व्याप्त अनेक भ्रान्तियाँ इस शिविर में टूटी और बहुत लोगों ने सोनगढ़ आने की इच्छा व्यक्त की तथा सभी ने अगली अष्टाह्निका में इसप्रकार से शिविर लगाने के लिये अत्यधिक अनुरोध किया जिसे स्वीकार कर लिया गया। उक्त अवसर पर ५ हजार रुपये से अधिक का सत्-साहित्य जन-जन तक पहुँचा।

तीर्थक्षेत्रों पर लगाये गये इसप्रकार के शिविर तत्त्वप्रचार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

—अखिल बंसल

प्रश्न - अज्ञानी जीव के पास नव तत्त्वों में से कितने तत्त्व हैं ?

उत्तर - अज्ञानी जीव के पास जीव, अजीव, आस्रव, बंध एवं पुण्य-पाप तत्त्व हैं परंतु संवर, निर्जरा-मोक्ष तत्त्व नहीं हैं। परंतु शास्त्र में लिखा हुआ आता है कि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव भी नव तत्त्वरूप से परिणमन करता है। इसका अर्थ यह है कि जीव, अजीव, आस्रव, बंध, पुण्य-पापरूप तो परिणमन करता है परंतु उसे जिस-जिस प्रकृति का बंध नहीं होता है, उस अपेक्षा से वह संवर कहा है। कर्म समय-समय खिरता जाता है इस अपेक्षा निर्जरा कही और कर्म कम बाँधता है, इस अपेक्षा मोक्ष कहा है, परंतु अज्ञानी को शुद्ध संवर, निर्जरा एवं मोक्षतत्त्व नहीं होता है।

पूज्य स्वामी जी के पवित्र करकमलों द्वारा

जिन बिम्ब की अंकन्यास विधि

श्री वर्धमानस्वामी दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव

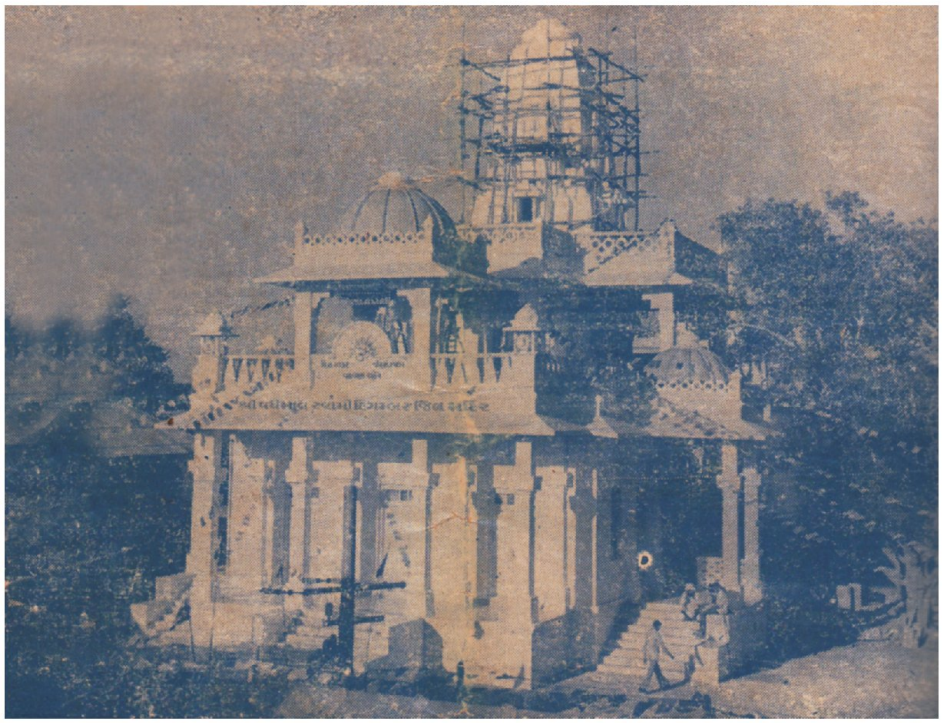

वर्धमानपुरी (वढवाण) के प्रांगण में श्री वर्धमानस्वामी के नवनिर्मित ६३ फुट उन्नत भव्य जिनमंदिर काश्री जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पूज्य स्वामीजी के मंगल प्रभाव से अत्यानन्दोल्लासपूर्वक मनाया गया। परम पूज्य १००८ श्री वर्धमानस्वामी के विशालकाय वीतराग भाववाही जिनप्रतिमा की तथा श्री सीमंधरस्वामी, श्री नेमिनाथस्वामी आदि अन्य तीर्थंकर भगवंतों के जिनबिम्बों की, उसी प्रकार श्री समयसार, श्री नियमसार, जिनवाणी की और श्रीमद्भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव के चरणचिह्नों की पूज्य स्वामीजी के पवित्र कर कमलों द्वारा मंगल स्थापना हुई। श्री वर्धमानस्वामी के आगमन से विशाल जिनमंदिर की भव्यता में सातिशय वृद्धि हुई है। जिन तथा जिनालय दोनों की अति रमणीयता भाविक भक्तों के हृदयों को पुलकित करती है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (३६६)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति २५००